शत्रुघ्नलाल शुक्ल



पहला सम्राट



राष्ट्रभाषा प्रकाशन

5-बी, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-110006

राष्ट्रभाषा प्रकाशन

प्रकाशक

राष्ट्रभाषा प्रकाशन
5-बी, नाथ मार्केट, नई सड़क, दिल्ली-110006

मुद्रक

स्वतंत्र प्लेइंग कार्ड कं०, देहली-6

संस्करण
1989

PEHLA SAMRAAT
by
Shatrughna Lal Shukla
Rs. 22.00

परिचय



भारत के इतिहास में सिकन्दर का आक्रमण एक प्रसिद्ध घटना है। उस समय के कुछ व्यक्तियों के नाम आज भी अमर हैं; जैसे चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, पोरस, नन्द और सेल्यूकस।

यह घटना तेईस सौ वर्ष पुरानी है। समय के आवरण के कारण इस महत्त्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में पूर्ण वास्तविक विवरण कई अंशों में दुर्लभ हैं। इस विषय में इतिहासकारों का मतभेद बढ़ता ही रहा है।



इधर नई खोजों के आधार पर जो तथ्य प्राप्त हुए है, उनसे घटना का एक नया ही रूप हमारे सामने आया है—प्रचलित इतिहास ग्रन्थों में वर्णित तथ्यों से सर्वथा भिन्न, नवीन और आश्चर्यजनक ! राजकुमार शशिगुप्त निश्चयतः इतिहास-प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य ही था, जिसे भारत का पहला 'सम्राट्' माना गया है। प्रस्तुत उपन्यास में उसी की गौरव-गाथा अंकित है।

—लेखक

बहुप्रशंसित
किशोर-उपन्यास-माला के पुष्प

सचित्र, सरस तथा स-उद्देश्य

वीर रस से पूर्ण

कर्ण

अर्जुन	भीष्म
हल्दी घाटी	श्री कृष्ण
खूब लड़ी मर्दानी	वीर कुंवरसिंह
गुरु गोविन्द सिंह	सम्राट् शिलादित्य
चित्तौड़गढ़ की रानी	चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
राम का अश्वमेघ	इन्द्र की पराजय
वीरांगना चेन्नम्मा	महाबली छत्रसाल
गढ़मण्डल की रानी	बाजीराव पेशवा
चक्रवर्ती दशरथ	राजा सूरजमल
महाबली इन्द्र	चन्द्रगुप्त मौर्य
सम्राट् अशोक	तांत्या टोपे
जय भवानी	वीर कुणाल
दुर्गादास	उदयन

अभिमन्यु

अन्य महापुरुषों पर आधारित

महाकवि कालिदास	गुदड़ी का लाल : लालबहादुर
शान्ति-दूत नेहरू	मदुरा का मीनाक्षी
ऋषि का शाप	देवता हार गए
स्वामी दयानन्द	आचार्य चाणक्य
गुरु नानक देव	मीरां बावरी
गुरु अंगद देव	संत कबीर
गुरु अमरदास	रवि बाबू
गौतम बुद्ध	विश्वामित्र

रेखाओं का जादूगर

बापू

शेक्सपियर के नाटकों पर आधारित

तूफान — हैमलेट — भूल पर भूल

मैकबेथ — राजा लियर — रोमियो जूलियट

जूलियस सीजर — राई से पहाड़ — वेनिस का सौदागर

ओथेलो — निराशा — जैसा तुम चाहो

शिकार, ज्ञान-विज्ञान, 'अरेबियन नाइट्स' पर आधारित

मगरमच्छ का शिकार — दरियावर द्वीप की शहज़ादी

दैत्याकार पक्षी का शिकार—हाथी का शिकार—अलीबाबा : चालीस-चोर

रूपा और लल्ली — बाघ का शिकार — उड़ने वाला घोड़ा

ह्वेल का शिकार — पूपू — अरब के मसखरे

साहसिक कहानियां एवं लोक-कथाएं

रंग बिरंगी परियां
हमारे बहादुर जवान
हमारे बहादुर हवाबाज़
सदाचार की कहानियां
विश्व की साहसिक गाथाएं
क्रान्ति की कहानियां
देश-देश की परियां भारत आईं
राजा-रानी की लोक-कथाएं
भाई-बहन की लोक-कथाएं
तीज-त्योहार की लोक-कथाएं
भारत के साहसी वीरों की गाथाएं
शिकार की रोमांचकारी सच्ची गाथाएं
साहस-रोमांच की सच्ची गाथाएं
साहसी समुद्री वीरों की सच्ची गाथाएं
नेफ़ा और लद्दाख के साहसी वीरों की गाथाएं

लेखक की अन्य रचनाएं

- राम का अश्वमेध
- दुर्गादास
- सम्राट् शिलादित्य
- उदयन
- रेखाओं का जादूगर
- मदुरा की मीनाक्षी (युनेस्को से पुरस्कृत)
- शेक्सपियर के नाटकों की कथाएं—चार भाग
- दैत्याकार पक्षी का शिकार
- विश्व की साहसिक गाथाएं



१



"स्वामी ! उधर न जाइए।" एक सैनिक ने शीघ्रतापूर्वक आगे आकर हाथ जोड़ दिए। उसका हांफता हुआ घोड़ा कड़-कड़ लगाम चबा रहा था।

हाथी पर सवार बलवान युवक ने आश्चर्य से उसकी ओर देखकर पूछा, "क्यों?" उसे सैनिक का सामने आ खड़ा होना अच्छा नहीं लगा था। वह जल्दी से जल्दी आगे जाना चाहता था।

सैनिक ने बताया, "हम जिनकी सहायता करने आए हैं, वे स्वयं भागे जा रहे हैं। तब, अपने को संकट में डालने से क्या लाभ?"

"क्या !!" हाथी पर बैठे हुए व्यक्ति की आंखें आश्चर्य और क्रोध से फैल गईं। उसे सैनिक के कथन पर सहसा विश्वास नहीं हो सका। हाथी अब तक खड़ा हो गया था।

"सच कह रहा हूं महाराज ! ईरानियों का दल बिखर गया है। जान पड़ता है, उनमें साहस है ही नहीं। वे यवनों के आगे टिक नहीं सके, इधर-उधर भाग रहे हैं।"

"और यवन?"

"वे विजय के मद में चूर होकर, ईरानियों को पैरों-तले रौंदते-कुचलते बढ़े जा रहे हैं।" सैनिक ने पीछे की ओर देखकर बताया।

"किन्तु हमारा दल तो भागने वाला नहीं था!"

"महाराज! वह था ही कितना! कुल अस्सी सैनिक थे। उनमें एक तिहाई मारे जा चुके हैं और जो जीवित हैं, वे अब भी यवनों की राह में अड़े हुए लड़ रहे हैं। लेकिन कहां हजारों बर्बर यवन सैनिक और कहां हमारे मुट्ठी-भर लड़ाका! कब तक ठहरेंगे!"

"चलो, मैं चलता हूं। देखूंगा, यवन किस तरह मेरे सैनिकों पर विजय पाते हैं!" युवक हाथी पर से कूद पड़ा और महावत से बोला, "तुम इसको संभालना, मैं आगे जा रहा हूं। इस पर आंच न आने पाए, क्योंकि हमारे पास यही अकेला रत्न है। काम पड़ने पर मैं बुला लूंगा।"

महावत ने अंकुश लगाया—हाथी पीछे की ओर लौट पड़ा।

सैनिक घोड़े से उतर पड़ा। उसने लगाम स्वामी की ओर बढ़ा दी। युवक उछला और घोड़े की पीठ पर जा बैठा।

सधा हुआ घोड़ा संकेत पाते ही उड़ चला। सैनिक छाया की भांति उसके पीछे दौड़ने लगा।

⊙

यह युद्ध भारत की नहीं, ईरान की धरती पर हो रहा था—आज से लगभग तेईस सौ वर्ष पूर्व। उस समय यूनान देश में एक छोटा-सा राज्य था मकदूनिया।* वहां का शासक था फ़िलिप। वह स्वयं तो एक साधारण व्यक्ति था, किन्तु उसका पुत्र सिकन्दर (अलेक्ज़ेण्डर) बड़ा ही शूरवीर, साहसी और

* मकदूनिया हो मैसीडन अथवा मसिडोनिया नाम से भी प्रसिद्ध है।

महत्त्वाकांक्षी था। उसे दिग्विजय करने की धुन सवार हुई और एक दिन वह सेना लेकर इस दुस्साहस-भरे अभियान पर निकल ही पड़ा। धीरे-धीरे अनातोलिया, सीरिया आदि पर अपनी विजय-पताका फहराते हुए उसने ईरान की सीमा पर पांव रखे। उसका स्वप्न विलक्षण था—विश्वविजय। वह चाहता था कि चीन तक अपना सिक्का जमाकर, पश्चिम से धुर पूर्व तक—सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना साम्राज्य स्थापित करे।

सिकन्दर के आक्रमण का समाचार पाकर ईरानियों के हाथ-पैर ढीले हो गए। वैभवशाली ईरान साम्राज्य उन दिनों आमोद-प्रमोद और विलासिता के चक्कर में पड़कर शिथिलता का शिकार हो गया था। युद्ध में जिस धैर्य और पराक्रम की आवश्यकता होती है, वह उस समय उनमें न थी। फिर भी वे आत्म-समर्पण नहीं करना चाहते थे, क्योंकि इससे ईरान की ऐतिहासिक प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती। सोच-विचार के बाद वहां के शासक सम्राट् दारा ने पड़ोसी राज्यों से सहायता मांगने का निश्चय किया, और इसी निमित्त उसने अपना एक दूत भारत भी भेजा था।

संयोगवश भारत की भी दशा उन दिनों अच्छी न थी। सारा देश छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। समर्थ कहे जा सकने वाले केवल दो राज्य थे—मगध और पंचनद। मगध की शक्ति अधिक थी, पर उसका राजा नंद अयोग्य था। वह सदैव मदिरा के नशे में डूबा रहता था। उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था—भोग, नाचरंग, मदिरा-पान और आनंद मनाना। राज्य की व्यवस्था कैसी है; पड़ोसी राज्यों में कहां क्या हो रहा है, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता था। भाग्यवश उसे मंत्री अत्यन्त योग्य मिल गया था। उसका नाम तो था; किन्तु विचार-व्यवहार में वह देवता था।

और नीति-कौशल से वही किसी प्रकार साम्राज्य का राज्य-प्रवन्ध संभाले हुए था।

जिस प्रकार भारत के पूर्वी भाग में मगध की धाक थी, वैसे ही पश्चिम में पंचनद और तक्षशिला की थी। तक्षशिला विद्या का केन्द्र तो था ही, सीमा पर होने के कारण वह विशेष सामरिक महत्त्व का स्थान भी था।

तक्षशिला का राजा आम्भीक था। पड़ोसी राज्य पंचनद से उसकी शत्रुता थी। यद्यपि मगध की अपेक्षा पंचनद छोटा राज्य था; किन्तु उसका राजा पर्वतक* मगध-नरेश जैसा विलासी और कायर न होकर दृढ़ और दूरदर्शी था। वीरता उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह जितना साहसी और शक्तिशाली था, उतना ही मानी और चतुर भी। शत्रु की ललकार वह कभी नहीं सह सकता था। तक्षशिला-नरेश आम्भीक उसका समर्थ शत्रु था, किन्तु पर्वतक को उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उसे अपनी तलवार और सुसज्जित सेना पर अटूट विश्वास था।

पश्चिमी भारत में इसी प्रकार के और भी कई छोटे-छोटे राज्य थे। वे उत्तर में गांधार और गजनी तक फैले हुए थे, किन्तु उनमें से कोई विशेष शूरवीर या सम्पन्न नहीं था। हां, तक्षशिला के अन्तर्गत एक छोटे-से भूभाग पर अश्वक नाम की क्षत्रिय जाति रहती थी, जो अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध थी। इस जाति का राजकुमार शशिगुप्त बड़ा होनहार और प्रभावशाली युवक था। उसकी आकृति और रूप-रंग ऐसे विलक्षण और प्रियदर्शी थे कि जो भी देखता, मुग्ध हो जाता—गौर वर्ण, भरा हुआ शरीर, उन्नत ललाट, तेजस्वी नेत्र, सस्मित अधर, सुदृढ़ स्कन्ध, चौड़ा वक्ष और लम्बी, दृढ़ भुजाएं। पहली दृष्टि

*पोरस, पौरव, अथवा पुरु के नाम से प्रसिद्ध।

में ही आभास मिल जाता था कि कोई महापराक्रमी राजपुरुष है।

शशिगुप्त जितना सुन्दर था, उतना ही साहसी, मेधावी और युद्धकुशल भी। तलवार-भाला चलाने में अद्वितीय था। घोड़े-हाथी की सवारी वह इतनी पटुता से करता था कि अच्छे-अच्छे सवार भी देखकर दंग रह जाते थे। बाण चलाने में तो वह अप्रतिम था। अश्वक जाति के बड़े-बूढ़े योद्धा उसके सम्बन्ध में गर्व से कहा करते थे—"हमारे राजकुमार तो महाधनुर्धर अर्जुन के अवतार हैं।"

तक्षशिला अभिसार तथा पंचनद जैसे समर्थ राज्यों से निराश ईरानी राजदूत अश्वकों के राज्य में पहुंचा—पश्चिम की सीमा पर सबसे छोटा राज्य—केवल एक गांव जैसा! फिर भी दूत की याचना पर राजकुमार शशिगुप्त ने सोचा—'ईरान हमारे देश की सीमा पर है। यदि वहां यूनानी सेना को विजय मिल गई, तो वह निश्चय ही इस ओर बढ़ेगी। फिर, ईरान आज हमसे 'सहायता' मांग रहा है। यह राम और कृष्ण का देश है। यदि मैं इन्कार करता हूं, तो लोग मुझे और मेरे देश को कायर कहेंगे।'

'कायर' शब्द मन में उठते ही शशिगुप्त की भुजाएं फड़क उठीं। उसका हाथ तलवार की मूठ पर जा पड़ा। उसने ईरानी राजदूत का हाथ थामकर कहा, "मेरे पड़ोसी मित्र! चिन्ता न करो। कोई भी तुम्हारा साथ न दे रहा हो तो भी निर्भय रहो! अश्वकों को अपनी जाति और देश की धरती पर अभिमान है। वे तुम्हारी सहायता अवश्य करेंगे। मैं अभी अपनी सेना तैयार कराता हूं। शशिगुप्त की नसों में रघु और राम का रक्त है, उसको यूनानी सेना स्वप्न में भी भयभीत नहीं कर सकती।" और मानो दृढ़ता को व्यक्त करने के लिए ही उसकी मुट्ठी छाती

से टकरा गई।

चारों ओर से निराश ईरानी राजदूत को जैसे डूबते समय नाव का सहारा मिल गया। घुटनों तक झुककर उसने शशिगुप्त का अभिवादन करते हुए कहा, "राजकुमार! सचमुच आपने क्षत्रिय जाति में जन्म लिया है। भारत का नाम आपने रख लिया। इतनी छोटी वय में, और इतनी छोटी सेना के बल पर आप हमारी सहायता के लिए खड़े हो गए, यह बात कभी भूली न जा सकेगी। जब-जब ईरान और सिकन्दर का नाम लिया जाएगा, लोग आपको पहले याद करेंगे।"

दूसरे दिन शशिगुप्त ने अपनी एक तिहाई सेना लेकर ईरान के लिए कूच किया। तीन सौ सैनिक अपने राज्य की रक्षा के लिए छोड़कर वह डेढ़ सौ सैनिकों सहित, ईरानी राजदूत के साथ चल पड़ा।

यह दुस्साहस की सीमा थी, किन्तु समर्थ राजा आमोद-प्रमोद में डूबे रहे। इस 'छोटी'-सी घटना की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। इसके महत्त्व, औचित्य और परिणाम की ओर विचार करने वाले तत्त्व, जैसे उनके मस्तिष्क में थे ही नहीं।

⊙

ईरान की सीमा पर पहुंचकर शशिगुप्त ने युद्धकौशल से काम लिया। उसने पीछे या आसपास से होने वाले संभावित आक्रमण को रोकने के लिए आधे सैनिकों को वहीं छोड़ दिया और शेष अपने साथ लेकर युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़ा।

सिकन्दर की सेना ईरान के मध्य भाग तक आ गई थी। कई मोर्चों पर भयंकर मारकाट करके भी ईरानी सेना यूनानियों को रोक न सकी थी। जैसे पानी की लहर में बालू का ढेर लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार सिकन्दर का दल ईरान की धरती को दलता-कुचलता बढ़ा आ रहा था।

शशिगुप्त बिना विश्राम किए चलता रहा। तीसरे दिन उसने युद्ध क्षेत्र में प्रवेश किया। ईरानी सैनिक यूनानियों से टक्कर लेते हुए धीरे-धीरे पिछड़ रहे थे। शशिगुप्त ने अपने सैनिकों को ललकारा, "वीरो! जैसे तुमने कभी लंका में रावण को हराया था, आज उसी तरह सिकन्दर को परास्त करो। देखो, सामने से यूनानी सेना चली आ रही है। निर्भय होकर उस पर टूट पड़ो और संसार को दिखा दो कि अश्वक जाति के रक्त में कितनी प्रबल शक्ति है।"

अस्सी अश्वकों का छोटा-सा दल बिना अपनी संख्या की चिन्ता किए, परम निर्भीक भाव से ईरानी सेना के साथ मिलकर, 'जय दुर्गे!' की ध्वनि से आकाश को कंपाता हुआ, यूनानी सेना पर टूट पड़ा।

यूनानी सेना विजय-मद में चूर थी। इन मुट्ठी-भर सैनिकों का दल देखकर यूनानी योद्धा कहने लगे, "जब पतंगे की मौत आती है तो वे दीपक पर टूटने लगते हैं!"

लेकिन थोड़ी देर बाद उनका विजय-मद उतर गया। अश्वकों की तलवार का पानी देखकर उनमें सनसनी फैल गई। एक-एक अश्वक पचीसों यूनानियों को उलझाए हुए था। देखते ही देखते, युद्ध की गति बदल गई। भाग रहे यूनानियों के पैर जम गए और वे डटकर सिकन्दर की सेना से लोहा लेने लगे।

सूरज अस्ताचल पर जा पहुंचा, पर यूनानी एक पग भी और नहीं बढ़ सके। अंधेरा हो जाने पर युद्ध बन्द हो गया। दोनों सेनाएं अपने-अपने डेरों की ओर लौट पड़ीं। उस रात दोनों दलों में अश्वकों के पराक्रम की चर्चा होती रही।

तीन दिन तक अश्वकों ने यूनानियों को मैदान में जहां का तहां रोके रखा, लेकिन चौथे दिन रंग बदल गया। मैदान में अड़े हुए अश्वक एक-एक करके मारे जा चुके थे और घेरे की

सीमा पर लड़ रहे सैनिक कई दलों में बंटे हुए थे। जो जहां लड़ रहा था, वहीं अटक गया था। यूनानियों की अपार सेना फिर आंधी की भांति दबोचे चली आ रही थी। अश्वकों के समाप्त होते ही ईरानी सैनिक हथियार डालकर पीछे की ओर भागने लगे।

उस समय अपने हाथी पर सवार शशिगुप्त उत्तर के मोर्चे की ओर जा रहा था। बीच में ही उसे पूर्वोक्त घुड़सवार सैनिक से पराजय का समाचार मिला। उसका रक्त खौल उठा। हाथी से कूदकर वह सैनिक के घोड़े पर बैठा और मैदान की ओर उड़ चला।

⊙

मोर्चे पर पहुंचते ही शशिगुप्त ने घोड़े की रास दांतों से दबाई और दोनों हाथों तलवार चलाने लगा। उसका घोड़ा सिंह की भांति उछल-उछल कर शत्रु दल को रौंद रहा था। अवसर पाकर वह शत्रु सैनिकों को दांतों से दबोचकर नोच-चोंथ डालता या झिझोड़कर फेंक देता। उसकी टापों की चोट से न जाने कितने यूनानी घायल होकर तड़पने लगे। और शशिगुप्त के हाथ तो जैसे अदृश्य हो गए थे। दोनों तलवारें हवा में लप-लपाकर शत्रुओं पर गिर रही थीं। शत्रुओं के हाथ-पैर-सिर कट-कटकर धरती पर बिखरते जा रहे थे। शशिगुप्त का यह भयंकर रूप देखकर यूनानी दल विचलित हो उठा। लगता था कि यह सैनिक अपनी तलवारों में एक समूची सेना का बल लेकर आया है।

यूनानी सैनिकों का सारा ध्यान उस अकेले अश्वक योद्धा पर केन्द्रित हो गया। उसकी तलवारें प्रलय ढा रही थीं। जब तक वह लड़ता रहेगा, तब तक कल्याण नहीं।

उस अकेले योद्धा को घेरकर पचीसों यूनानी सैनिक प्रबल

वेग से उस अकेले सिंह पर तलवार भाले चलाने लगे। लेकिन वीर शशिगुप्त ने प्राणों का मोह त्याग दिया और अभिमन्यु की भांति मरने-मारने पर सन्नद्ध होकर, घोड़े की पीठ पर खड़ा हो गया। कुछ ही क्षणों में उसने पचीसों यूनानियों को धराशायी कर दिया। यूनानियों का मनोरथ भंग करके वह शत्रुओं को चीरता-रौंदता हुआ अपने लिए रास्ता बनाकर घेरेसे बाहर निकल आया।

वह यूनानी सेना को कुचलता हुआ अपने सैनिकों से, जा मिलने का प्रयत्न कर रहा था, ठीक उसी समय स्वयं सिकन्दर ने आकर उसकी राह रोक ली। यह पहला अवसर था, जब दोनों एक-दूसरे के सामने आए। लेकिन शशिगुप्त शंकित नहीं हुआ। वह वैसे ही निर्भीकता के साथ शत्रु सेना को मूली की तरह काटता हुआ बढ़ता रहा।

सिकन्दर ने देखा, बीस वर्ष का एक भारतीय युवक घोड़े की पीठ पर खड़ा दांतों के बीच रास दबाए, एक हाथ में भाला और दूसरे में तलवार लिए बिजली की तरह वार कर रहा है। कमर में दो छुरियां बंधी हैं, पीठ पर धनुषबाण। उसका गोरा शरीर धूप में दमक रहा है। चेहरा क्रोध के कारण लाल हो गया है। पसीने और खून से लथपथ आंखें अंगारों की भांति जल रही हैं। भय की कहीं एक रेखा तक नहीं दीख रही। यूनानी सैनिक उसकी छाया भी नहीं छू पा रहे हैं। वह अकेला रण-बांकुरा उन्हें काटता-रौंदता बढ़ता ही जा रहा है।

सिकन्दर की आंखें चौंधिया उठीं। कोई अज्ञात शक्ति उसके मन में पुकार-पुकार कर कहने लगी : 'ओ विजेता सिकन्दर ! दिग्विजय की कामना लेकर आए हुए ओ यूनान के गौरव ! इस युवक से सावधान ! यह कोई विलासी ईरानी नहीं, भारत का क्षत्रिय है। सच ही प्रसिद्ध है कि इनके पूर्वज देवताओं द्वारा सम्मानित होते थे ! देख, कितना तेज है इसके चेहरे पर ! यह

रक्त-मांस का नहीं, लौहनिर्मित मनुष्य है—आग की वह चिनगारी, जो क्षण-भर में भड़ककर बड़े-से बड़े ढेर को भस्मीभूत कर सकती है।'

और, शशिगुप्त देख रहा था—सत्ताईस वर्ष का स्वस्थ-सुन्दर बलवान यूनानी योद्धा, मूल्यवान वस्त्र पहने, तीक्ष्ण बरछे और भारी यूनानी खड्ग से सुसज्जित घोड़े पर सवार, मेरी ओर बढ़ रहा है। दूसरे सैनिकों की अपेक्षा इसकी आंखों में तेज अधिक है। मुख पर गौरव-गर्व की छाप है और होंठों पर कठोरता। निश्चय ही यह व्यक्ति अत्यन्त क्रूर स्वभाव का है।

अब तक दोनों के बीच की दूरी और कम हो गई थी।

यूनानी सैनिकों के रंग-ढंग और कोलाहल से शशिगुप्त को आभास मिल गया कि यही वह सिकन्दर है, जो विश्वविजेता बनने का स्वप्न साकार करने के लिए देश-देश को रौंदता हुआ यहां तक आ पहुंचा है; जिसके घोर पराक्रम की कहानियां दूर-दूर तक फैलाई जा रही हैं। उसने तीक्ष्ण दृष्टि से यूनानी-विजेता की ओर देखा, मानो उसका मर्म बंध रहा हो। और मन ही मन प्रतिज्ञा की : 'अलक्षेन्द्र! तू चाहे जितना पराक्रमी और प्रचण्ड हो, मैं तुझे परास्त करके ही छोड़ूंगा। भले ही तुझे ईरान में विजय मिल जाए, किन्तु भारत-भूमि पर तेरे पैर नहीं टिकने पाएंगे। तेरा विश्वविजय का स्वप्न मैं भंग कर दूंगा!"

अकस्मात् सिकन्दर ने अपने सैनिकों को ललकारा, "पकड़ लो इस भारतीय को! यह मेरे लिए ही भारत से ईरानियों का साथ देने आया है। इसी से वहां का सारा भेद लेना है।"

यूनानी सैनिकों में जैसे सौगुना बल आ गया। उन्होंने पलक झपकते घेरा बांध लिया और लम्बे बरछों की नोक पर शशिगुप्त को पकड़ने का प्रयत्न करने लगे। किन्तु उस ज्वलन्त पिण्ड को पकड़ सकना सम्भव नहीं था। यूनानियों को व्यूह बनाते देखकर

उसने संकेत से घोड़े को उछाल दिया और सबको रौंदता-लांघता सहसा ठीक सिकन्दर के सामने जा पहुंचा। उसका साहस और अश्वारोहण का विचित्र कौशल देखकर सिकन्दर दंग रह गया। उसके मुंह से निकला—'अरे !'

तभी उसकी दृष्टि अपने घोड़े पर पड़ी, जो अचानक कांपने लगा था। कारण समझते ही वह क्षण-भर को तेजहत हो गया—उसका घोड़ा शशिगुप्त के भाले से बिंध गया था और उसके पेट से खून की फुहार उछल रही थी।

सिकन्दर घोड़े पर से कूद पड़ा। रक्षा का दूसरा उपाय नहीं था। उसको प्राण-संकट में देखकर एक यूनानी सैनिक ने तुरन्त अपना घोड़ा बढ़ा दिया। तर्क-वितर्क का समय नहीं था। सिकन्दर एकबारगी उछलकर सैनिक के घोड़े पर जा बैठा। नया घोड़ा पाकर उसका आत्मबल फिर से जीवित हो उठा। उसने देखा, शशिगुप्त सैनिकों को काटता हुआ निकला जा रहा है—उसने तुरन्त एड़ लगाई। घोड़ा प्रचण्ड वेग से उड़ चला पर वह कृतकार्य न हो सका—शशिगुप्त तब तक शत्रु दल घेरे को तोड़कर अपने सैनिकों में जा मिला था।

अब पीछा करना सम्भव नहीं था। निराश होकर सिकन्दर शिविर की ओर लौट गया। उस दिन वह बहुत ही उद्विग्न रहा। उसे पल की भी शान्ति नहीं मिल सकी। इस घटना से अपमानित होकर वह लगातार सोचता रहा, मुट्ठी-भर अश्वक सैनिक कितने घातक हैं! इनका यह राजकुमार तो ऐसा है मानो स्वयं देवता अपोलो* ही धरती पर उतर आया है। एक खरोंच तक न लगने पाई शरीर में। पचासों सैनिकों को रेलता-पेलता अछूता निकल गया। उसने मेरे घोड़े को बींधकर गिरा दिया

*यूनान में सूर्य को 'अपोलो' कहते हैं।

और मैं उसकी परछाईं तक नहीं छू सका! धिक्कार है मुझको, मेरे पौरुष को! विजय पर विजय करने वाला मुझ जैसा योद्धा भी आज इस अकेले युवक से पराजित हो गया।'

अश्वकों की संख्या बहुत कम रह गई थी। शशिगुप्त ने ईरानी सैनिकों को रोकने के लिए बहुत उपाय किए, पर सिकन्दर की सेना का वेग देखकर उनका साहस टूट गया। उन्होंने हथियार डाल दिए और यूनानी झंडे के सम्मुख सिर झुकाकर प्राणों की भीख मांगने लगे।

शशिगुप्त को ईरानियों के इस आचरण से गहरी ठेस लगी। यदि उसे इसका तनिक भी आभास मिला होता कि ईरानी सेना पीठ दिखा देगी, तो कदाचित् अपना देश छोड़कर, उनकी सहायता के लिए न आता। पराजय की कालिमा ने ईरान के इतिहास को विकृत कर दिया। यूनानी सेना उसकी श्री-सम्पदा को कुचलती हुई, विजय गर्व की हंसी हंस रही थी।

अब शशिगुप्त क्या करता! निराश होकर उसने ईरान छोड़ दिया और अपने नाम-मात्र के बचे हुए सैनिकों के साथ तुरन्त स्वदेश की ओर लौट पड़ा। यह तो निश्चित ही था कि ईरान की पराजय से यूनानी सेना की शक्ति और भी बढ़ गई है। यहां से अपार धन भी मिलेगा। अब सिकन्दर पूर्व की ओर बढ़ेगा। उसका मार्ग रोकने के लिए शशिगुप्त तक्षशिला की सीमा पर अपनी और मित्रों की सेनाएं एकत्र करके व्यूह बांध लेना चाहता था।

उधर सिकन्दर सोच रहा था: 'भारतीयों की फूट का लाभ उठाकर इसी अभियान में उसे भी रौंद डालना चाहिए।'



२



तक्षशिला नगर के पूर्वी भाग में एक पुराना शिव-मन्दिर था। कहा जाता है, वह पाण्डवों का बनवाया हुआ था। जो भी हो उसमें रखी मूर्ति बड़ी भव्य थी। प्रति सोमवार को सैंकड़ों नागरिक वहां पूजा करने आते थे।

संध्या हो गई थी—चबूतरे पर बैठा एक ब्राह्मण किसी की प्रतीक्षा कर रहा था। उसका रूप-रंग विचित्र और कुछ-कुछ भयानक था। देखकर मन में एक प्रकार का आतंक-सा छा जाता था। वर्ण उसका गहरा श्याम था। देहयष्टि सामान्य से कम, कुछ-कुछ क्षीण किन्तु दृढ़ थी। सिर पर काली, मोटी गांठ-दार चोटी थी और मस्तक पर चन्दन का टीका। नेत्रों में व्यग्रता और असन्तोष का भाव झलक रहा था। मुख-मुद्रा से प्रतीत होता था कि वह अपने किसी कठोर निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने की योजना बना रहा है। आयु का अनुमान नहीं हो पाता था, फिर भी यह स्पष्ट था कि युवावस्था को पार करके वह प्रौढ़ता की सीमा में पहुंच गया है।

लोग आ-जा रहे थे। किसी का ध्यान उसकी ओर जाता, किसी का नहीं। अधिकांश की धारणा थी कि वह कोई साधारण

पुजारी या भिक्षुक ब्राह्मण होगा। किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न थी। वह साधारण-सा दीखने वाला ब्राह्मण एक असाधारण व्यक्ति था—अर्थ शास्त्र और राजनीति का प्रकाण्ड विद्वान। उसकी आकृति भले ही वितृष्णाकारी थी, किन्तु उसका मस्तिष्क इतना प्रभावशाली और मोहक था कि जो भी उसके विचारों को सुनता, विना किसी तर्क के अनुगामी बन जाता था।

उसका नाम था विष्णुगुप्त। आचार्य चणक का पुत्र होने के कारण उसे चाणक्य कहा जाता था। ब्राह्मणों के कुटल वंश में उत्पन्न होने से वह परम्परानुसार कौटिल्य* प्रसिद्ध हुआ था।

थोड़ी देर बाद एक युवक आता दीख पड़ा। चाणक्य प्रसन्न हो गया। वह शायद उसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

युवक ने पास आकर उसके चरणों पर सिर रखते हुए कहा, "गुरुदेव ! थोड़ा विलम्ब हो गया, क्षमा करें।"

चाणक्य ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर उठने का संकेत किया। बोला, "कोई बात नहीं। किन्तु अब तुम्हें बहुत सावधान रहना चाहिए। भयंकर आंधी आने वाली है ! कुछ भी हो सकता है। यह युगान्तर की वेला है।"

"मेरे लिए जो भी आज्ञा होगी, करूंगा।" युवक ने उसी विनम्रता के साथ उत्तर दिया।

चाणक्य सन्तुष्ट हो गया।

यह युवक वही शशिगुप्त था—अश्वकों का राजकुमार। चाणक्य उसका कुलगुरु था। उसी ने शशिगुप्त को राजनीति और युद्ध की शिक्षा दी थी। वह ज्योतिष का भी प्रकाण्ड विद्वान

---

*आज भी भारतीय इतिहास के पन्नों पर कौटिल्य विष्णुगुप्त चाणक्य की कीर्ति-गाथा अंकित है।

था। उसे लक्षणों से मालूम हो चुका था कि शशिगुप्त बहुत ही प्रतापी और बुद्धिमान है, इसलिए उस पर विशेष स्नेह भी था।

चाणक्य कुछ देर मौन बैठा सोचता रहा, फिर बोला, "यूनान का राजा अलक्षेन्द्र ईरान में विजयी होकर अब भारत-भूमि को पद-दलित करने आ रहा है। वह इस पवित्र धरती पर आर्यधर्म के स्थान पर अपनी यवन-संस्कृति की पताका लहराने का स्वप्न देख रहा है।

शशिगुप्त की मुद्रा कठोर हो उठी। उसके विशाल नेत्रों में रक्तिम ज्योति जाग उठी। किन्तु उसने स्वयं को संभाला और वैसे ही विनम्र स्वर में कहने लगा, "स्वप्नभंग भी तो हो जाते हैं, गुरुदेव! औरों का जो भी विचार हो, किन्तु जब तक हम अश्वकों में से एक भी व्यक्ति जीवित रहेगा, तब तक तो अलक्षेन्द्र का स्वप्न साकार नहीं हो पाएगा।"

चाणक्य ने दूर खड़े एक वृक्ष पर दृष्टि गड़ाए हुए, शशिगुप्त को भविष्य का रूप दिखाया: "अकेले अश्वकों का दल उसे नहीं रोक सकेगा, कुमार! यवन सेना बहुत बड़ी है। वह जिधर भी जाती है, टिड्डी-दल की भांति धरती पर छा जाती है। फिर, अब तो भारतीय सैनिक भी उसके साथ हो जाएंगे!"

"भारतीय सैनिक! सिकन्दर की सेना के साथ!! क्या कह रहे हैं, आचार्य?" शशिगुप्त का आश्चर्य अविश्वास के रूप में आंखों की राह झांकने लगा।

"हां, मुझे सूचना मिली है कि चतुर यूनानी विजेता अलक्षेन्द्र को भारत की आन्तरिक स्थिति और यहां के पारस्परिक कलह-विद्वेष का पूरा विवरण ज्ञात है। उसका लाभ उठाकर अब वह कुछ भारतीय राजाओं को मित्र बनाने का षड्यन्त्र रच रहा है।"

"किन्तु भारत की धरती पर कौन ऐसा मूर्ख नरेश है

जो उस वर्बर यूनानी की मित्रता के जाल में फंसना चाहेगा ! मुझे तो इस सूचना पर विश्वास नहीं होता, देव !"

"किन्तु विश्वास करना पड़ेगा, शशिगुप्त ! राज्यलोभ में मनुष्य का विवेक नष्ट हो जाता है। उसे उचित-अनुचित का भेद नहीं दिखाई पड़ता। फिर अपने-अपने हित के लिए अन्धे नरेश तो किसी भी स्तर तक गिर सकते हैं !" क्षण-भर रुककर चाणक्य ने भारी स्वर में कहा, "मुझे निश्चित रूप से ज्ञात हुआ है शशिगुप्त कि यवनपति का समर्थक एक भारतीय नरेश आतुरतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

"अच्छा ! कौन है वह कुल कलंक ?" शशिगुप्त की भौहें चढ़ गईं।

लेकिन चाणक्य के व्यवहार में न उत्तेजना थी, न अधीरता। उसने वैसे ही सहज, शान्त भाव से कहा, "इसी तक्षशिला का राजा आम्भीक। यवनपति की मित्रता के लिए यह बहुत ही व्यग्र है।"

"निश्चय ही यह किसी लाभ या लोभ की प्रेरणा से होगा !"

"राज्य का लोभ, राज्य का लाभ ! आम्भीक को आशा है कि सिकन्दर अपने विजित प्रदेश उसे ही सौंप जाएगा।"

"धिक्कार है ऐसे क्षत्रिय को, जो दूसरों के उच्छिष्ट पर जीता है ! गौरव अपने बाहुबल और आचरण से अर्जित किया जाता है। याचना से तो केवल भीख मिलती है। और भिखारी होना क्षत्रिय के लिए सबसे बड़ा कलंक है !"

चाणक्य अपने शिष्य की नैतिक दृढ़ता पर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा, "ऐसे ही विचारों ने आर्यजाति की पताका विश्व में लहराई थी; किन्तु आज द्वेष-भाव ने उसे आक्रान्त कर रखा है। आम्भीक के इस कदाचार का मूल कारण भी यही द्वेष-भावना है।"

शशिगुप्त जिज्ञासामयी दृष्टि से चाणक्य की ओर देखता रहा।

"जानते हो न, तक्षशिला और पंचनद परस्पर विरोधी है। आम्भीक का ऐसा ही विरोध अभिसार राज से भी है। इन्हीं दोनों को परास्त करने के लिए उस नीच क्षत्रिय ने स्वयं ही सिकन्दर को बुलाया है।" चाणक्य ने गहरी सांस खींची।

देशद्रोही आम्भीक के आचरण के परिणाम की कल्पना करके शशिगुप्त उफनकर बोला, "यह तो उसकी भयंकर मूर्खता है, आर्य ! यदि कल उसी सिकन्दर ने आम्भीक को भी दबोच लिया, तब ?"

"यही तो होगा ! सिकन्दर जिस दिग्विजय का स्वप्न लेकर यूनान से निकला है, वह इसी प्रकार तो पूरा होगा—कहीं बल से, कहीं छल से ! कितने ही छोटे राजाओं को उपहार भेजकर उसने जो अपनापा दिखाया है, उसके पीछे यही छल तो है ! समर्थ विरोधियों को वशीभूत करने में वह पहले तो आम्भीक का सहयोग प्राप्त करेगा, फिर उसे भी···" चाणक्य ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया।

जैसे सहसा कुछ याद आ गया, शशिगुप्त ने चमत्कृत होकर कहा, "आपका अनुमान सत्य ही है, देव ! यदि आम्भीक का हाथ न होता तो सिकन्दर इतनी शीघ्रता से सिंधु नद के इस पार तक कैसे आ पहुंचता ! ईरान के युद्ध में मेरे सैनिकों की संख्या नगण्य थी, फिर भी उन्होंने यवन सेना के दांत खट्टे कर दिए थे। स्वयं सिकन्दर तक 'भारतीय सैनिकों' का पराक्रम देखकर आतंकित हो गया था। यदि आपका सन्देश न मिला होता, तो मैं लड़ते-लड़ते सिकन्दर को कुछ सीख देकर वहीं प्राण त्याग देता, इस प्रकार पराजय का कलंक लेकर वहां से न लौटता !"

चाणक्य ने अनुभव किया—शशिगुप्त के स्वर में पश्चाताप है। निश्चय ही वह ईरान में हुई पराजय से खिन्न है। उसने समझाया, "उदास क्यों होते हो, राजपुत्र! मुझे पता चला था कि सिकन्दर किसी युक्ति से तुम्हें भी अपने मायाजाल में उलझाना चाहता है, इसी से तुमको किसी भी प्रकार लौट आने का सन्देश भेजा था, अन्यथा वहां सिकन्दर के चंगुल से तुम्हारा मुक्त होना असम्भव ही हो जाता।"

गुरु के द्वारा इस रहस्य का आभास पाकर शशिगुप्त शंका, आश्चर्य और प्रतिशोध की भावना से एक साथ तप्त हो उठा—"तो गुरुदेव! क्या मुझे उसके मायाजाल में फंसना ही पड़ेगा?"

"अवश्य!" चाणक्य ने कहा, "बिना ऐसा किए यवनों से देश की रक्षा नहीं हो सकेगी!"

"जाल में फंसने का अर्थ हुआ, यवनों से मित्रता करना!"

"हां, उनके घर में पैठकर अपने पांव जमाना, फिर उनको परास्त करना!"

"यह तो छल कहा जाएगा, आचार्य! मैं वीर क्षत्रिय होकर भी ऐसा छल करूं?"

"इस समय तो यही करना है! छल हो अथवा युक्ति, राजनीति में सब क्षम्य है, शशिगुप्त! और यह भी तो सोच देखो कि यह छल किसके साथ और क्यों किया जा रहा है!"

शशिगुप्त तर्कमग्न-सा चुपचाप, उसकी ओर देखता रहा।

चाणक्य ने आगे कहा, "देखो, परसों सिकन्दर अपने थोड़े से अंगरक्षकों के साथ, आम्भीक की राजसभा में आएगा। उसके स्वागत हेतु तक्षशिला के सभा-भवन को खूब सज-धज की गई है। आस-पास के कई अन्य राजा भी आम्भीक की सभा में ही उसके सम्मान में सिर झुकाने आएंगे। उन सबसे सिकन्दर छल-भरी मित्रता करेगा। तुम्हारी वीरता से तो वह अत्यन्त प्रभावित है

हो, इसीलिए वह तुमको ईरान-भारत की सीमा पर स्थित आरनस दुर्ग का छत्रप* बनाने का लोभ दिखा रहा है। अपने इस विचार का वह प्रचार करा रहा है तो केवल तुम्हें लुभाने के लिए! ज्यों-त्यों लोगों को मिलाकर वह इस समय विरोधियों की सख्या कम करके समर्थ शत्रुओं से भिड़ेगा! इसी नीति से तो वह ईरान और भारत तक अपना साम्राज्य स्थापित करने की कल्पना कर रहा है!"

"किन्तु उसकी अधीनता तो मैं किसी भी मूल्य पर स्वीकार नहीं कर सकूंगा, देव! कहां वह आततायी म्लेच्छ और कहां मैं! आपका शिष्य!"

"राजनीति में भावुकता से तो काम नहीं चलता, कुमार! इसमें कर्तव्य और अवसर का ताल-मेल बैठाना पड़ता है। लक्ष्य अडिग होना चाहिए—प्राप्ति के साधन कुछ भी हों! इस समय यहां के लोग यूनानी विजेता से प्रभावित हैं। उसका छत्रप बनकर ही तुम इस समय इस प्रदेश की जनता का मुक्त समर्थन प्राप्त कर सकोगे।"

क्षण-भर मौन रहकर शशिगुप्त ने अनिश्चय में झूलते हुए पूछा, "आचार्य! क्या यह निश्चित है कि सिकन्दर भारत में प्रवेश करके पूर्व की ओर बढ़ेगा?"

"अवश्य! इस प्रदेश में उसका विरोधी केवल एक व्यक्ति है—पंचनद-नरेश पर्वतक। और सब तो उसको मान्यता देने का निर्णय किए बैठे हैं। देखना है कि पर्वतक उसे कहां तक रोक पाता है! वैसे तो यवन-सेना किसी भी प्रकार मगध की सीमा से आगे नहीं बढ़ सकेगी।"

"किन्तु आप तो कहते हैं कि मगध का राजा नन्द अयोग्य है—भला वह यवनों का सामना किस प्रकार कर सकेगा?"

* दुर्गपति—किलेदार।

शशिगुप्त ने शंका की।

"नन्द के सारे अभावों की पूर्ति करता है, उसका मंत्री राक्षस। वह जैसा कुलीन और विद्वान ब्राह्मण है, वैसा ही दूर-दर्शी, अनुभवी और प्रजाप्रिय भी है। मगध का शासन तो वास्तव में वही करता है—नन्द आडम्बर-मात्र है!"

शशिगुप्त की जिज्ञासा जाग्रत् हुई, "आप मगध-मंत्री को जानते हैं?"

चाणक्य मुस्करा पड़ा, "क्या कहते हो, वत्स! आचार्य राक्षस को कौन नहीं जानता! मैं तो उनका सहपाठी भी रहा हूं! हम दोनों ने यहीं तक्षशिला में एक साथ अध्ययन किया था। वह मेरे मित्र हैं और गुरुभाई भी।"

एक क्षण मौन रहकर शशिगुप्त ने फिर मूल विषय की ओर लौटते हुए पूछा, "तो, अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

चाणक्य भी मगधमंत्री का चिन्तन छोड़कर वर्तमान में आ गया। उसने सुगम्भीर दृढ़ स्वर में कहा, "परसों तुम आम्भीक की सभा में सिकन्दर का छत्रप बनकर आरनस दुर्ग की सत्ता संभाल लो, फिर धीरे-धीरे सेना सगठित करके बल-संग्रह करते रहो। किसी अनुकूल अवसर पर यवनों से युद्ध किया जाएगा।"

"किन्तु···" कहते-कहते शशिगुप्त रुक गया।

"किन्तु क्या?"

"तब तक क्या आर्यावर्त यवन सेना द्वारा पद-दलित होने से बचा रहेगा? क्या वे इसे नष्ट-भ्रष्ट नहीं कर डालेंगे?"

"सम्भवतः ऐसा नहीं हो होगा! मेरा अनुमान है, कि वीर पर्वतक ही यूनानी विजेता का गर्व चूर कर देगा और उसकी गजसेना के धावे से आतंकित यवन सेना को आर्यावर्त की ओर बढ़ने की कल्पना त्यागकर उलटे पांव स्वदेश लौटने के लिए विवश होना पड़ेगा···तुम इस ओर से निश्चिन्त र

कर्तव्य निवाहो !"

शशिगुप्त ने उठकर चाणक्य की पदरज माथे से लगाई और प्रणाम करके तुरन्त ही विदा हो गया।

आकाश में फैली लालिमा का रंग गहरा होकर काला पड़ चला था। दो-चार तारे भी टिमटिमाने लगे थे। प्रकृति में जैसे क्लान्तिजन्य शान्ति व्याप्त हो रही थी। पक्षी पंख फड़फड़ाते हुए पेड़ों पर आ बैठे थे। चाणक्य ने एक बार चारों ओर दृष्टि घुमाई, फिर जम्हाई लेकर उठ खड़ा हुआ। आस-पास कोई न था। आरती के शंख एवं घण्टे की ध्वनि उठने लगी।

चाणक्य को कुछ याद आया। चबूतरे से उतरकर वह तीव्र गति से चलता हुआ अंधेरे में लुप्त हो गया।

तीसरे दिन तक्षशिला की राज्यसभा में उत्सव था। उत्तर भारत के कितने ही राजा, छत्रप और सेनापति आए हुए थे। आम्भीक ने उनके भव्य स्वागत की विशेष व्यवस्था की थी। ठीक समय पर समारोह प्रारम्भ हुआ। थोड़ी देर बाद सिकन्दर ने अपने अंग-रक्षकों सहित सभा-भवन में प्रवेश किया। उसके जय-जयकार से आकाश गूंज उठा। दर्शकों ने उस पर पुष्प वर्षा की। उसके बाद तक्षशिला-नरेश आम्भीक ने सिकन्दर का गुण-गान किया; फिर यूनानी विजेता को प्रसन्न करने के लिए आतुर छोटे-बड़े राजाओं ने उपहार देना प्रारम्भ किया। लगभग आधे पहर तक यही क्रम चलता रहा।

अन्त में सिकन्दर ने अपने आसन से उठकर सभा की ओर गर्व-भरे नेत्रों से देखते हुए, अपनी विजय, आम्भीक की मित्रता, अन्य राजाओं की सहयोगी-भावना और भारत-यूनान को एक दृढ़ शासन-व्यवस्था के अधीन करके स्वर्ग बना देने के सपने दिखाए—

"....मैं आप सभी लोगों का आभारी हूं और समय आने पर सभी को पुरस्कार दूंगा, जो मेरे सहायक हो रहे हैं। महाराज आम्भीक तो मेरे मित्र है ही, जो कोई भी मेरी मैत्री चाहेगा, उसके लिए मेरा हाथ सदा आगे बढ़ा रहेगा। अश्वकों के राजकुमार शशिगुप्त की वीरता की मैं सराहना करता हूं। उनसे मुझे बड़ी-बड़ी आशाएं है, इसलिए आज से ही उन्हें अपने आरनस दुर्ग का छत्रप बना रहा हूं। वहां रहकर वह ईरान-भारत सीमा की रक्षा करेंगे। यूनान की दिग्विजयी सेना बढ़कर पूर्वी महासागर के तट तक अपना झंडा लहराना चाहती है। इस कार्य में जो कोई भी हमारी सहायता करेगा, उसे उसके क्षेत्र का स्वामी बना दिया जाएगा। विरोध करने वाले को कुचलने के लिए मेरी सेना तो है ही, साथ-साथ महाराज आम्भीक जैसे मित्रों का बल भी मुझे प्राप्त है...."

सभा में चाणक्य के साथ शशिगुप्त भी बैठा हुआ था। विदेशी आक्रान्ता के प्रति उसके भीतर विद्रोह की भावना फुफकार उठी। चेहरे पर असन्तोष का भाव झलक आया। उसने चाहा कि उठकर भरी सभा में सिकन्दर के इस मायाजाल को छिन्न-भिन्न कर दे, किन्तु पास बैठे अपने गुरु की उपेक्षा कर सकना उसके लिए असम्भव था। चाणक्य ने संकेत से कहा, 'स्वीकार कर लो!' और वह उठकर खड़ा हो गया।

सभा में दूर-दूर के राजा और अधिकारी आए हुए थे। अश्वक तो अपनी वीरता के लिए लोकविख्यात थे, किन्तु शशिगुप्त से बहुत कम लोग परिचित थे। इस समय सिकन्दर द्वारा उसको प्रदत्त महत्त्वपूर्ण अधिकारों ने उनमें जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। जैसे ही वह खड़ा हुआ, सबकी कौतूहल-भरी आंखें उसी पर जा लगीं। लोग मुग्ध हो उठे। वैसा मोहक और प्रियदर्शी व्यक्तित्व उन्होंने कभी नहीं देखा था। सबके मन में बरबस प्रशंसा

के भाव उमड़ आए—'कैसा तेजस्वी व्यक्तित्व है !'

सिकन्दर ने शशिगुप्त को अपने गले से मोतियों की माला उतारकर देते हुए कहा, "भारतीय राजकुमार ! यूनान का सम्राट् तुमको अपना एक चिह्न दे रहा है ! इसको सावधानी से रखना।"

जीवन में आज पहली बार शशिगुप्त को इच्छा के विरुद्ध कार्य करना पड़ा। उसकी आत्मा, उसका क्षत्रियत्व तड़प-तड़प उठते थे। वह किसी भी कारण सिकन्दर की अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहता था, किन्तु गुरु की आज्ञा के सामने वह विवश था। वस्तुतः, अभी उसे कूटनीति का अनुभव नहीं था। अत्यधिक आत्मविश्वास और दर्प के कारण वह मात्र कृपाण-नीति का ही विश्वासी था। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं, चुपचाप बढ़कर मुक्ता-माला ले ली और आत्मदमन करके किसी प्रकार उसे माथे से लगाकर आदर प्रकट किया, फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

दूसरे राजा, यहां तक कि आम्भीक भी मन ही मन उसके सौभाग्य की सराहना कर रहे थे। किन्तु शशिगुप्त की आत्मा स्वयं को धिक्कार रही थी : 'आज मैंने अश्वकों को कलंकित कर दिया ! इस यवन की दासता मैंने क्यों स्वीकार की ? जो मेरे देश पर आक्रमण करे, मैं उसकी सेवा करूं; इससे बढ़कर देश-द्रोह और क्या होगा ! ये सारे राजागण कितने अधम हैं कि अपने गौरव को भूलकर एक विदेशी के हाथों मातृभूमि का सम्मान बेच रहे हैं। एक राजा राम थे, जिन्होंने लंका जाकर रावण का संहार किया, और एक हम हैं कि लंका से रावण को बुलाकर आर्यावर्त का संहार करा रहे हैं ! मैं भी कुछ नहीं बोला। गुरुदेव इतने दूरदर्शी होकर भी मुझे ऐसा विरुद्धाचरण की आज्ञा न जाने क्यों दे रहे हैं…'

एकाएक उसका ध्यान भंग हो गया। सिकन्दर कह रहा था :

"उत्तर भारत के सीमावर्ती अन्य सारे राजा मेरे अधीन हो गए है, किन्तु पंचनद का राजा पर्वतक घोर अभिमानी है। उसने मेरे दूत का अपमान भी किया है। अब उस पर आक्रमण करके मैं बताऊंगा कि यूनान-सम्राट् की आज्ञा भंग करने का क्या फल होता है ! राजा आम्भीक से मैंने बातचीत कर ली है और कल ही पंचनद की ओर अपनी सेना बढ़ाऊंगा। देखूं, पर्वतक में कितना साहस है। मैं यूनान से जिस दिग्विजय का सपना लेकर चला हूं, उसे पूरा करके ही रहूंगा। पंचनद पार करके मगध और उसके बाद चीन तक अपनी विजय पताका लहराना मेरा पहला कार्य है। पर्वतक जैसे रोड़े मेरे पैरों तले आकर धूल में मिल जाएंगे !"

आम्भीक और उसके साथी कह उठे, "आप ठीक कह रहे हैं, सम्राट् ! पर्वतक घोर अभिमानी है। अपने आगे वह सबको तुच्छ समझता है। उसकें सैनिक हम जैसे पड़ौसियों की सीमा में आकर प्रायः उत्पात मचाते रहते है। विरोध प्रकट करने पर वह युद्ध की चुनौती देने लगता है। उसको कुचलकर आप पंचनद प्रदेश अपने अधीन कर लें, तो हम लोगों की विपत्ति सदा के लिए टल जाए। पर्वतक को आप ही दण्ड दे सकते है। वह भयानक सर्प की भांति सबको डसने के लिए दौड़ता रहता है। उसको किसी भी तरह कुचल दीजिए !"

शशिगुप्त का मन क्षोभ से भर उठा, 'क्या सचमुच, ये सब भारतीय है ? अपने देश और देशवासी के साथ ऐसा विश्वासघात करते, इन्हें लाज नहीं आती ?' थोड़ी देर बाद किसी और का स्वर सुनकर उसने सिर उठाया। सिकन्दर के सम्मुख अधीन भाव से खड़ा आम्भीक परम प्रसन्नता के साथ यवन सेना की

विरुदावली वखान रहा हैं।

इस दृश्य ने उसके अन्तर्मन के क्षोभ और घृणा को भड़का दिया। शशिगुप्त ने चाहा कि आम्भीक को उठाकर पटक दे और धिक्कारते हुए, उस पर थूक कर पूछे, 'क्यों रे कुलकलंक ! क्या तुझे ईश्वर और इतिहास का तनिक भी भय नहीं है ?'

वह कसमसाकर उठने ही वाला था, कि पास बैठे चाणक्य ने संकेत से रोक दिया, "नहीं ! चुपचाप समय की प्रतीक्षा करो।"

शशिगुप्त को चाणक्य के प्रति अगाध श्रद्धा थी। अपने गुरु की नितिज्ञता तथा देश-प्रेम पर उसे दृढ़ विश्वास था। इस समय यद्यपि वह क्रोध से उद्धत हो उठा था, फिर भी चाणक्य की आज्ञा शिरोधार्य करके चुपचाप बैठा, देशद्रोह का नाटक देखता रहा।

सिकन्दर और आम्भीक तन्मय होकर मगध-विजय का स्वप्न साकार करने की भूमिका तैयार कर रहे थे।

३





राजा पर्वतक और अभिसार-नरेश में गहरी मित्रता थी, किन्तु जब अभिसार-नरेश ने देखा कि हमारा निकट शत्रु आम्भीक सिकन्दर की ओर हो गया है, तो वह चिन्ता में पड़ गया। उसके मन को कभी सिकन्दर की सेना का भय मथने लगता, कभी पर्वतक की मित्रता का विचार। इस दुविधा में वह डगमगाने लगा था।

आज जब आम्भीक के षड्यन्त्र से यवन सेना भारत भूमि पर मंडराने लगी तो उसका स्वाभिमान जाग उठा। पंचनद राज्य पर सिकन्दर के आक्रमण का समाचार चारों ओर फैल गया था, किन्तु कोई भी पंचनद की सहायता को प्रस्तुत नहीं हो रहा था। यह देखकर किसी भी प्रकार का देशप्रेम अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। उसका विवेक और शौर्य स्वयं को धिक्कारने लगा—'यह कैसी क्षुद्रता थी कि अभी तक मैं निष्क्रिय बैठा रहा। पंचनद की सहायता में अब एक पल का भी विलम्ब घातक होगा।'

उसी भावावेग में उसने सेनापति को प्रस्थान की आज्ञा दे दी। अब उसके मन में न कोई संशय था, न भय। प्रायश्चित के

लिए अघोर उसका क्षत्रियत्व बार-बार स्वयं से कह रहा था—'रणभूमि में रक्त से ही इस कलंक को धोऊंगा।'

सिकन्दर को सीमावर्ती राजाओं की मित्रता पर तनिक भी विश्वास नहीं था। वह कौवे और सियार की भांति चौकन्ना रहता था। तक्षशिला वाले समारोह की अवहेलना करके उसने अपने गुप्तचर चारों ओर फैला रखे थे, जो उसे भारतीय राजाओं की गतिविधि-सम्बन्धी छोटी से छोटी बात भी बताते रहते थे। अभिसार-नरेश की तैयारी और पंचनद की सीमा की ओर उसके प्रस्थान की सूचना भी मिली। सुनते ही यवन सेना आशंकित हो उठी :—'पता नहीं, और भी कौन-कौन-से राजा इसी तरह छिपकर चोट करने की घात में हों।'

सिकन्दर क्रुद्ध हो उठा था। वह थोड़ी देर चुपचाप बैठा आग्नेय नेत्रों से आकाश की ओर देखता रहा, फिर फुफकार उठा, "अपनी तैयारी करो, जो भी होगा, देखा जाएगा।"

यवनों का सबसे बड़ा समर्थक राजा आम्भीक ही था। सिकन्दर अधिक-से-अधिक लोभ दिखाकर आम्भीक को और भी बांध लिया। उसके प्रति खूब घनिष्ठता और अपनापा प्रकट किया, उसे किसी प्रकार का सन्देह न हो सके। फिर उसने अपनी सेना को तुरन्त बढ़कर पंचनद पर घेरा डालने की आज्ञा दी। देर होने पर अभिसार की सेना के भी वहां पहुंच जाने की आशंका थी।

उसी सन्ध्या को यूनानी सेना ने पंचनद की ओर प्रस्थान कर दिया। अभिसार की सेना वहां पहुंचती, इसके पहले ही यवनों के शिविर वितस्ता (झेलम) नदी के तट पर खड़े हो गए।

उस ओर वितस्ता ही पंचनद राज्य की सीमा थी। पंचनद की रक्षा के लिए वह प्राकृतिक खाई जैसी थी। उसके तट पर सिकन्दर का आ पहुंचना ही निश्चित युद्ध का संकेत था।

पर्वतक और उनकी सेना में आत्मबल की कमी नहीं थी। वे निर्भय होकर शत्रु से टक्कर लेने के लिए व्यूह बनाने लगे। उन्हें न यूनानियों की विशाल वाहिनी का भय था, न अपने सीमित साधनों की चिन्ता! वे इतने आत्मविश्वास के साथ समरभूमि की ओर बढ़ रहे थे, मानो वनराज सिंह भेड़-बकरियों के झुण्ड में प्रवेश करने जा रहा हो।

रातों-रात सारी तैयारी हो गई। प्रभात के सूर्य ने आंखें खोलीं, तो देखकर चकित रह गया—एक ओर यवन सैनिकों का महानगर बसा हुआ है*, दूसरी ओर पंचनद की छोटी-सी सेना किसी मेले का-सा दृश्य उपस्थित करके उत्साह से कोलाहल मचा रही है। यूनानियों की ओर से आम्भीक भी ससैन्य आया हुआ है, जब कि पर्वतक को किसी का सहयोग नहीं मिला। दोनों दल युद्ध के लिए आतुर हैं। उनके मध्य बह रही वितस्ता की धारा जैसे चिन्ता और भय से व्याकुल है। कदाचित् अगले ही क्षणों में अपनी छाती पर होने वाले भीषण नरसंहार की कल्पना से वह विचलित हो उठी है। किन्तु, सेनाओं का ध्यान उसकी ओर नहीं है। वे अपनी-अपनी विजय के लिए जैसे खून की एक नई वितस्ता बहा देने के लिए कटिबद्ध, तूर्यनाद कर रही हैं।

राजा पर्वतक ने अपनी सेना के दो भाग कर रखे थे। एक भाग वितस्ता के इस पार था, जो शत्रु को नदी पर पहुंचने से रोकने के लिए था, दूसरा भाग नदी के उस पार था, जो भीतरी भाग की रक्षा तथा इस पार वाले दल की सहायता करता था।

---

* सिकन्दर की सेना में १,२०,००० पैदल और १५,००० घुड़सवार थे; जब कि पर्वतक की सेना में केवल २०,००० पैदल और २,००० घुड़सवार थे।

यह दल बड़ा था। पर्वतक ने जान-बूझकर ऐसा किया था। नदी-पार बाहर की ओर रहने वाली सेना केवल सीमा की देखरेख के लिए रहती थी। सेना का अधिकांश राजधानी में ही रहता था।

सवेरा होते ही सिकन्दर ने नदी पार करके पंचनद को रौंद डालने का आदेश दिया। विजय-मद में चूर यवन सैनिक झपट चले; किन्तु सामने पर्वतक की सेना छाती अड़ाए खड़ी थी। दोनों दल टकरा गए। भयंकर मार-काट आरम्भ हो गई। यूनानी नदी पार करके पंचनद की सीमा में पैठने के लिए कटिबद्ध थे; किन्तु पर्वतक के वीर सैनिक प्राण रहते उनको नदी से दूर ही रखने का प्रण ठान बैठे थे।

देखते-देखते युद्ध ने भयानक रूप धारण कर लिया। दोनों ओर के सैनिक निर्मम होकर लड़ रहे थे; क्योंकि यह युद्ध दो राज्यों का न होकर दो धर्मों, संस्कृतियों, जातियों और देशों का था। विदेशी यवन शत्रु को आक्रान्त करके सदा के लिए कुचल देना चाहते थे। वे आक्रामक थे और भारतीय आत्म-रक्षक। एक बलपूर्वक प्रवेश करने को सन्नद्ध था, दूसरा समूची शक्ति से उनके निषेध के लिए कटिबद्ध। दोनों ही हिंस्र हो उठे थे—जीवन की अन्तिम सांस तक, रक्त की अन्तिम बूंद तक अडिग रहने के लिए कृत संकल्प।

सैनिकों की संख्या की दृष्टि से दोनों दलों में धरती-आकाश का अन्तर था; किन्तु भारतीय सैनिक लोहे की दीवार की भांति दृढ़तापूर्वक जमकर शत्रु का सामना करते रहे। यवन बार-बार नावों के द्वारा नदी पार करने का प्रयत्न करते, पर पंचनद के सैनिक उन्हें बीच में ही डुबो देते थे।

कुछ यवन सैनिक चुपचाप डुबकी लगाकर नदी के बीच स्थित एक रेतीले द्वीप तक पहुंच गए, किन्तु उन्हें भी अन्त तक

पंचनद के वीरों ने वाणों से छेद दिया। दोनों सेनाओं की नावें टकरा रही थीं। लोहे से लोहा बज रहा था।

अब नदी के वक्ष पर युद्ध हो रहा था। सैनिक कट-कटकर गिर रहे थे। नदी की धारा लाल हो गई थी। उसमें अनेक शव और आहत शरीर इस प्रकार बह रहे थे, जैसे घड़ियाल तैर रहे हों। बड़ा ही रोमांचकारी और वीभत्स दृश्य था। किन्तु मृत्यु से दो-दो हाथ करने को तत्पर सैनिकों के लिए तो वही सबसे रोचक और उत्साहवर्धक था। वे क्षण-क्षण पर दुर्धर्ष होते जा रहे थे।

⊙

कई दिनों तक नदी पर ही युद्ध होता रहा। इस बीच सारे देश में समाचार फैल गया कि सिकन्दर ने पंचनद पर आक्रमण कर दिया है। उसे रौंदकर वह मगध की ओर बढ़ना चाहता है। इतने पर भी कोई राजा देश की रक्षा के लिए पर्वतक की सहायता करने के लिए नहीं आया। सिकन्दर के आतंक से चारों ओर निराशा की भावना व्याप्त थी। लोग शक्ति रहते हुए भी अपने को परास्त अनुभव कर चुके थे, इसलिए वे केवल प्राण-रक्षा को ही सबसे बड़ी विजय मानकर उसी की युक्ति में लगे थे।

यवनों ने जब देखा कि हमारा बल काम नहीं आ रहा है तो उन्होंने छल का आश्रय लिया। एक रात गहरा अंधेरा छाया हुआ था। यवनों ने रणभूमि से परे एक निर्जन स्थान से चुपचाप नौकाओं द्वारा नदी पार करने का प्रयास किया। सफलता मिली। यवन सैनिक वितस्ता पार करके पंचनद की धरती पर उतरने लगे। थोड़ी ही देर में भारतीयों को पता चल गया। वह तुरन्त उस ओर दौड़ पड़ी; किन्तु उस दिन समय अनुकूल न था। अधिकांश सैनिक कई दिनों से चल रहे युद्ध में मारे जा

चुके थे। जो शेष थे, वे टिड्डी दल जैसे यवन-समूह को रोक नहीं पा रहे थे। उस पर भी रात्रि का समय! चारों ओर घना अंधेरा और हर प्रकार से सावधान यवनों का कुटिलता-भरा आक्रमण! उस आकस्मिक स्थिति को संभाल पाना मुट्ठी-भर सैनिकों के लिए सम्भव नही था, तथापि वे विचलित नहीं हुए। एक हाथ में मशाल और दूसरे में तलवार लिए वे उन्मादियों की भांति तब तक लड़ते रहे, जब तक अंग-अंग कटकर धारा में डूब नहीं गए। यवन सेना वितस्ता पार करके पंचनद की सीमा में धंस ही गई।

शत्रुवाहिनी को इस पार आ गया देखकर भी योद्धा पर्वतक हतोत्साहित नहीं हुआ। उसने अपने सैनिकों को ललकारा :

"वीरो! हमारी संख्या कम है, पर इसकी चिन्ता न करके शत्रु पर टूट पड़ो! एक विदेशी आकर हमको हमारे ही घर में परास्त करे, कुचल दे, हमारे लिए इससे बढ़कर लज्जा और धिक्कार की बात क्या होगी! फिर हम ठहरे क्षत्रिय! अर्जुन और भीम के वंशज!"

राजपूतों का अभिमान जाग उठा। वे जान हथेली पर रखकर रणक्षेत्र में कूद पड़े। जैसे घास के ढेर को थोड़ी-सी आग भस्म कर देती है, उसी प्रकार राजा पर्वतक के वे थोड़े-से सैनिक विशाल यवन-सेना का संहार करने लगे। स्वयं पर्वतक दुस्साहसी वीर था। अपने घोड़े को वेग से दौड़ाता हुआ वह यवन सेना में घंस पड़ा। उसका रूप काल की भांति भयानक और अग्नि की भांति तेजोमय हो उठा था। उसके पहुंचते ही दोनों दलों में कोलाहल मच गया। भारतीय सेना उसका जय-कार कर रही थी और यवन सैनिक उसे मार डालने या बन्दी बना लेने के लिए एक-दूसरे को ललकार रहे थे।

राजा पर्वतक बाण-वेग से शत्रुदल चीरता हुआ मध्य में

धंसा और यवनों का संहार करने लगा।

पर्वतक का विशालकाय बलिष्ठ घोड़ा रूप और गुण में पूरा बादल था—वैसा ही रंग, वैसा ही वेग। उसको रोकने की सामर्थ्य किसी में नहीं थी। उसकी टक्कर से कितने ही यवन सैनिक और उसके घोड़े धराशायी हो गए। उसके सुम जैसे धरती पर पड़ते ही न थे, आकाश में तैरता हुआ-सा वह शत्रु सेना को रौंद रहा था।

कुछ ही दूर पर सिकन्दर अपने प्रसिद्ध घोड़े 'बुकाफिलस' पर सवार दीख पड़ा। पर्वतक ने उस पर दृष्टि पड़ते ही अपने घोड़े को एड़ लगाई अगले क्षण वह बुकाफिलस से जा टकराया।

सिकन्दर के पास पहुंचते ही पर्वतक ने पूरे वेग से उस पर भाले का वार किया। वार में इतना वेग था कि यदि भाला सिकन्दर के माथे या वक्ष पर पड़ा होता, तो उसके साथ ही बुकाफिलस को भी बेध डालता। किन्तु सिकन्दर ने कौशलपूर्वक घोड़े को उछाल दिया था, इसलिए स्वयं तो बच गया, हां भाला बुकाफिलस की पीठ और छाती फाड़ता हुआ, जांघ के पास जा निकला था। वह जोर से तड़पा, गिरा और मर गया।

सिकन्दर लुढ़ककर दूर जा पड़ा। ठीक तभी पर्वतक ने दूसरा वार किया। निश्चित था कि जो दशा बुकाफिलस की हुई है, वही उसके स्वामी की भी होती। किन्तु सिकन्दर के अंग-रक्षकों ने तत्परता से बढ़कर पर्वतक का वह वार झेल लिया।

सिकन्दर बचा तो, किन्तु घोड़े से गिरकर वह अचेत हो गया था। सैनिकों ने उसे संभाला और तत्काल शिविर की ओर ले भागे। किसी को इस घटना का आभास तक नहीं मिलने दिया गया—कहीं सेना का मनोबल न टूट जाए। युद्ध वैसे ही उग्ररूप में चलता रहा। दोनों दल एक-दूसरे का संहार करते रहे। पर्वतक घूम-घूमकर अपनी सेना का उत्साह बढ़ा रहा था।

चारों ओर से शस्त्रों की झंकार उठ रही थी। पैदल और घुड़-सवार सभी अपने-अपने दल की विजय के लिए जूझ रहे थे। एक ओर अपार सैन्य बल था, दूसरी ओर आत्मबल। आश्चर्य की बात यह थी कि आत्मबल के आगे सैन्य-बल के पांव टिक नहीं रहे थे।

चेतना लौटने पर सिकन्दर ने इधर-उधर देखकर पूछा, "मैं कहां हूं?"

पास ही उसका सेवक एण्टीगोरस खड़ा था। उसने विनम्र स्वर में बताया, "स्वामी अपने शिविर में हैं।"

सिकन्दर ने आंखें मूंद लीं। धीरे-धीरे उसे युद्धक्षेत्र की घटना याद आ गई। घोड़े पर आक्रमण के लिए सन्नद्ध राजा पर्वतक का प्रचण्ड रूप उसकी आंखों में कौंध गया। लगा कि पर्वतक का भाला मेरे सिर को छेदना ही चाहता है। इस भयानक कल्पना ने उसे रोमांचित कर दिया। आत्म-रक्षा के लिए वह उछलने ही जा रहा था कि एण्टीगोरस बोल पड़ा—"आपके लिए पानी लाऊं?"

दुष्कल्पना भंग हो गई! एण्टीगोरस का स्वर सुनकर सिकन्दर यथार्थ लोक में लौट आया। युद्ध की भयंकरता देखकर उसे पहले ही दिन चिन्ता हो गई थी, आज स्वयं को आहत पाकर वह और भी शंकित हो उठा। न जाने कौन उसकी अन्तरात्मा को बार-बार पुकारने लगा: 'भारतीय सैनिक की वीरता संसार में अनूठी है! उसका सामना करना सहज नहीं। ऐसा न होता, तो यह देश न जाने कब का मिट गया होता।'

कुछ पल ऐसे ही मौन चिन्तन में बीते, फिर सिकन्दर ने एण्टीगोरस की ओर देखकर पूछा, "तुम्हें यहां के सैनिक कैसे लगे?"

एण्टीगोरस उसका आशय नहीं समझा। और यदि समझा तो भयवश स्पष्ट कहने का साहस नहीं कर सका, चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा।

सिकन्दर समझ गया। बोला, "डरो मत! मैं तुम्हारी सम्मति लेने के लिए ही पूछ रहा हूं। यहां के युद्ध को देखकर मैं सशंक हो उठा हूं!"

एण्टीगोरस ने कहा, "स्वामी, यदि क्षमा पाऊं तो कहूंगा कि हमारी सेना को जितना भारतीयों ने थकाया है, उतना कभी और किसी ने नहीं। अनातोलिया, सीरिया, मिस्र और ईरान आदि में तो हमें सैनिकों से नहीं, मानो मोम के पुतलों से लड़ना पड़ा था, किन्तु भारतीय सैनिक न मोम के है, न हाड़ मांस के, वे तो जैसे लोहे से बने हुए हैं। इनको परास्त करना सरल नहीं!"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है।" सिकन्दर ने लम्बी सांस खींचकर कहा, "यहां की वीरता का आभास मुझे ईरान में ही मिल गया था, जब एक युवक अश्वकों की छोटी-सी टुकड़ी लेकर वहां ईरानियों की ओर से लड़ने आया था।"

"वही तो, जिसको आपने तक्षशिला की सभा में सारनस का क्षत्रप बनाया है!"

"हां, वही। निश्चय ही वह अद्भुत वीर है। तुमने देखा होगा कि उसकी रूपरेखा और चाल-ढाल कितनी भिन्न है! लाखों की भीड़ में उसे अलग पहचाना जा सकता है!"

यह उसी शशिगुप्त की प्रशस्ति थी।

एण्टीगोरस चुपचाप खड़ा रहा।

सिकन्दर ने थोड़ी देर बाद कहा, "इस पर्वतक की सेना छोटी होकर भी कितनी दृढ़ है! उसके सैनिक जैसे पीछे हटना हो नहीं जानते।"

"मैंने देखा है कि उसके कई सैनिकों के सिर कट गए थे,

फिर भी उनके धड़ बड़ी देर तक लड़ते रहे। लगता है मानो प्रेतों की सेना आ गई हो।"

बात सच थी। सिकन्दर ने स्वयं भी भारतीय सैनिकों का यह अदम्य शौर्य और उत्साह देखा था। उसने कोई विरोध नहीं किया—विचार-मग्न बैठा रहा।

थोड़ी देर बाद उसने एण्टीगोरस से कहा, "जाओ ! तैयारी करो ! जिस तरह भी हो, हमें पूर्वी समुद्र तक, एशिया के छोर तक, विजय करनी ही है।"

एण्टीगोरस चला गया।

⊙

युद्ध चलता रहा। कई दिन बीत गए, किन्तु कुछ निर्णय न हो सका। पर्वतक की सेना ने बहुत बड़ी संख्या में यूनानियों का संहार कर डाला था; किन्तु साथ-साथ उसका अधिकांश भी कट चुका था। और बाहर से कोई सहायता मिलने की सम्भावना भी नहीं थी। तब उसने अपने हाथियों को सुरक्षित सेना को मैदान में उतार दिया। हाथी उस समय की अजेय शक्ति समझे जाते थे। उनके आते ही भारतीय सैनिकों का उत्साह दुगुना हो गया। वे काल की भांति विकट रूप धारण करके यवन सेना का संहार करने लगे।

यूनानियों को यह अनुभव पहली बार हुआ। विशालकाय हाथी घूम-घूमकर उन्हें रौंद रहे थे। वे किसी को सूंड से उठाकर पटक देते थे, किसी को पैरों-तले कुचल देते थे और कहीं किसी सवार को घोड़े सहित उठाकर दूसरे सवार पर दे मारते थे। कुछ हाथियों की सूंड़ में लोहे की मोटी-मोटी जंजीरें थमा दी गई थीं। उन्हें घुमा-घुमाकर वे निर्दयतापूर्वक शत्रु दल का विनाश कर रहे थे। तलवार-भाले उनके लिए व्यर्थ थे। उनकी चोट से घायल होकर तो वे और भी उन्मत्त हो उठते। एक

पहर में ही यवनों का साहस टूट चला। वे बिलबिलाते हुए इधर-उधर भागने लगे। पंचनद के सैनिक विजय-गर्व से प्रेरित होकर उनका पीछा करने लगे।*

विजयमद में भूले सिकन्दर ने अकस्मात् पासा पलटते देखा तो बौखला उठा। वह स्वयं कवच बांधकर रणभूमि में अपनी सेना के सामने आ खड़ा हुआ। भागते हुए सैनिक उसे देखकर ठमके। सिकन्दर ललकारकर बोला :

"ओ यूनान के योद्धाओ! क्या तुम भूल गए कि मुझे कितने ही विद्वानों ने ईश्वर का अवतार बताया है। भला कहीं ईश्वर भी किसी से हार सकता है! बढ़ो आगे! जिन भालों से तुमने आधी पृथ्वी को जीत लिया है, उन्हीं से छेद डालो इन हाथियों को! इनकी सूंड़ तलवारों से काट दो और महावतों को मार गिराओ! पर्वतक जैसे कीट-पतंगों की क्या चिन्ता! तुमको तो अभी मगध का राज्य लेना है, फिर दूर चीन तक धावा मारकर पूर्वी समुद्र तट पर विजय का झंडा फहराना है!"

लेकिन सिकन्दर की ललकार अरण्यरोदन सिद्ध हुई। लाख प्रयत्न करने पर भी उसके सैनिक मैदान में ठहर न सके। पर्वतक के मतवाले हाथियों का समूह घूम-घूमकर उन्हें कुचलता रहा। कंटीली जंजीरों की मार बहुत ही भयानक थी। उनकी चोट से एक साथ कई-कई सैनिक धराशायी हो जाते। घुड़सवार और पैदल सेना भी उसी वेग से यवनों को काट रही थी। सिकन्दर की सेना का साहस छूट गया। अपने देश से इतनी दूर आते-आते वह वैसे ही थककर चूर हो गई थी; ऊपर से भारतीयों की सर्वनाशी शक्ति का आतंक। जब तक विजय और

* एरियन, डायोडोरस और प्लूटार्क जैसे इतिहासकारों ने भी पर्वतक के हाथियों द्वारा यूनानी सेना के विध्वस का वर्णन किया है।

लूट का अवसर मिला, तब तक सब कुछ भूलकर यूनानी सैनिक तलवारों के हाथ दिखाते रहे, अब जान पर बन पड़ी। प्राण-रक्षा का केवल एक उपाय रह गया था, मैदान छोड़कर भागना! सैनिकों ने यही किया।

किन्तु पीछे लौटने पर भी कल्याण कहां था! वहां वितस्ता की धारा लहरा रही थी। कुछ यवन सैनिकों ने नाव पर उस पार भागने का प्रयास किया, तो उस पार खड़े भारतीय सैनिकों ने उन्हें बाणों से वेधकर धारा में ही डुबो दिया। उधर नदी की धारा, इधर मतवाले हाथी—दोनों ओर मृत्यु जबड़ा फाड़े खड़ी थी। हारकर कितने ही यवन सैनिकों ने हथियार डाल दिये, कितने ही निराश सैनिक हाथियों के पैरों-तले लोट गए और कितनों ने वितस्ता की धारा में कूदकर आत्महत्या कर ली।

पासा पलट रहा था। युद्ध की गति उत्तरोत्तर भीषण होती जा रही थी और विजयश्री सिकन्दर को अंगूठा दिखाती धीरे-धीरे मुस्कराती हुई राजा पर्वतक की ओर बढ़ती जा रही थी।

अन्तत: सिकन्दर की सेना में विद्रोह हो गया। हाथियों की मार से विचलित यवन सैनिक दारुण स्वर में चीत्कार करते हुए इधर-उधर भाग रहे थे। वे सिकन्दर को गालियां देते हुए पंचनद के सैनिकों के सामने सिर झुकाने लगे।

सिकन्दर हताश हो गया। जय की कल्पना न जाने कहां चली गई। यही नहीं, उसे प्राण-रक्षा भी कठिन दीख पड़ने लगी। आहत सैनिकों का क्रन्दन उसे विचलित करने लगा। स्वयं को ईश्वर का अवतार समझने का दम्भ न जाने कहां चला गया। उसने युद्ध बन्द करने की आज्ञा देकर अपना घोड़ा पर्वतक के हाथी की ओर बढ़ाया। थोड़ी दूर पर ही रुककर वह दीन स्वर में पुकार-पुकारकर प्रार्थना करने लगा :

'ओ पंचनद के स्वामी! ओ महाराज पर्वतक, मैं तुम्हारे बल-

विक्रम के आगे परास्त हो गया। तुमसे युद्ध करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मैं तुमसे सन्धि की प्रार्थना करता हूं।* दया करके अपने हाथियों को रोक लो और मेरे सैनिकों की प्राण-रक्षा करो। ओ वीरवर! ओ आर्य जाति के गौरव! मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो। मैं तुम्हारी आज्ञा के विरुद्ध कभी नहीं जाऊंगा!"

पर्वतक जैसा शूरवीर था, वैसा ही युद्धधर्म का ज्ञाता और पालक भी। रणनीति से वह भलीभांति परिचित था। उसने तुरन्त युद्ध बन्द करा दिया। निःशस्त्र, शरणागत और दया के याचक पर हाथ उठाना क्षात्रधर्म-विरुद्ध है। उसने अपने सैनिकों को आदेश दिया, 'वीरो! इस समय ये विदेशी, प्राणों की भीख मांग रहे हैं, इसलिए शान्त हो जाओ! शरणागत को हम अभयदान देते हैं! फिर भी तुम्हें सजग रहना है; ताकि यदि ये कभी विश्वासघात करें तो इन्हें वितस्ता में जलसमाधि लेने के लिए विवश कर सको।'

युद्ध बन्द हो गया।

दोनों सेनाएं अपने-अपने शिविरों की ओर लौट पड़ीं। यूनानी सैनिकों को जैसे जीवन मिल गया। वे सोच रहे थे—अब जैसे भी हो, हमें स्वदेश लौट जाना चाहिए। इसके विपरीत भारतीय वीर सोच रहे थे—महाराज ने दयालु होकर यवनों को अभयदान दे दिया; नहीं तो हम 'विश्वविजेता' सिकन्दर को पिंजड़े में बन्द करके पचनद की गलियों में घुमाते।

---

* यद्यपि सामान्य इतिहास-पुस्तकों में पर्वतक (पोरस) की पराजय लिखी गई है, किन्तु अनेक विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि सिकन्दर को वितस्ता तट के युद्ध में विजय नहीं मिली, वरन् पर्वतक की गजसेना से त्रस्त होकर विवशतः स्वयं उसने ही सन्धि-याचना की थी।

रात में सिकन्दर ने अपने शिविर में आम्भीक से कहा, "तक्षशिला-नरेश! आप मेरी ओर से राजा प्रवतक के पास जाकर सन्धि के लिए कहिए। बिना ऐसा किए हमारी-आपकी रक्षा न हो सकेगी। जैसे भी बने, पर्वतक को सन्धि के लिए तैयार करना ही होगा!"

पर्वतक की शक्ति और अजेयता ने आम्भीक को भी शंकित कर दिया था। नया राज्य पाना तो दूर, अब अपना ही राज्य छिन जाने का भय उसे निरन्तर विचलित कर रहा था। उसने तुरन्त सहमति प्रकट की : "अवश्य, मैं कल प्रातः ही पर्वतक के पास जाऊंगा।"

दूसरे दिन राजा पर्वतक उसे अपने पास आया देखकर चकित हो उठा, "अरे, आप! तक्षशिला-नरेश!"

"हां महाराज, जौ के साथ घुन भी पिस रहा है। मुझे बचाइए! मैं तो आपका अपना ही हूं!" आम्भीक ने छल से काम लिया।

पर्वतक बोला, "आप मुझसे क्या चाहते है? पहले अपना उद्देश्य बताइए। तभी तो मैं उसपर विचार करूंगा।" वास्तव में आम्भीक जैसे देशद्रोहियों से उसे घृणा थी।

आम्भीक ने कहा, "बुद्धिमान वही है, जो समय के अनुसार अपने को बना सके। युद्ध में सिकन्दर को परास्त करना सहज नहीं है। किन्तु आज वह कुछ डगमगा गया है, इसलिए यदि आप सन्धि कर लें, तो दोनों पक्षों के गौरव की रक्षा हो जाएगी। सन्धि के लिए यवन-सम्राट् की ओर से आपको बहुमूल्य उपहार भी प्राप्त होंगे···।"

"सन्धि नहीं, तब इसे 'याचना' कहिए! यदि यवन-सम्राट् मुझसे प्राण भिक्षा मांग रहा है तो मैं अवश्य दूंगा। पर, उसे कुछ दण्ड देना भी तो आवश्यक है, क्योंकि उसने अकारण ही

हम लोगों पर आक्रमण किया है।"

"सन्धि का अर्थ होगा मित्रता ! महान् सिकन्दर की मित्रता भी महान् होगी।"

पर्वतक का अभिमान जाग उठा। उसने आम्भीक की भर्त्सना करते हुए कहा, "धिक्कार है उस भारतीय को, जो एक विदेशी आक्रामक को और उसकी वर्बर युद्धप्रियता की महानता बखान रहा है। मैंने सुना है, आप सिकन्दर के क्रीतदास हो गए हैं ! क्या सचमुच आपने धन और धरती के लोभ में मातृभूमि की प्रतिष्ठा क्रूर विदेशी आक्रान्ता के हाथों बेच दी है, तक्षशिला-नरेश ?"

घोर अपमान, भय और ग्लानि से आम्भीक का चेहरा पीला पड़ गया। उसका शरीर थरथराने लगा ! जान पड़ा, बस, अब गिरा ही चाहता है।

पर्वतक ने भर्त्सना की : "आप मेरे शिविर में न होकर युद्ध-क्षेत्र में मिले होते तब मैं दिखाता कि देश और जाति के गौरव पर कलंक लगाने वालों से मैं कैसा व्यवहार करता हूं और यह भी कि इस गौरव को किस प्रकार सुरक्षित रखा जाता है ! इच्छा हो तो अब फिर अपने महान् सिकन्दर को लेकर सामने आइए ! मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूं।"

आम्भीक को ऐसी भर्त्सना की कल्पना नहीं थी, यद्यपि उसने भारतीय गौरव के विपरीत आचरण करके सिकन्दर का साथ दिया था*, फिर भी वह स्वयं को प्रतिष्ठित-नरेश और

*कहा जाता है कि आम्भीक ने सिकन्दर से एक हजार टैलॅंट (लगभग ३८ लाख रुपयों के मूल्य के बराबर यूनानी सिक्के) लेकर उसकी अधीनता स्वीकार की थी—अर्थात् वह सचमुच सिकन्दर के हाथों बिक चुका था।

अपराजेय योद्धा समझता था।

सिकन्दर का दूत बनकर जाते समय उसने सोचा था कि पर्वतक उससे बड़ा प्रभावित होगा। सिकन्दर-जैसे विश्वविजेता से उसकी सन्धि की वार्ता करने के लिए वह जा रहा था, अतः पूरा विश्वास था कि पर्वतक उसका खूब आदर-सत्कार करेगा। आभार मानेगा। किन्तु यहां तो बात ही उल्टी थी। खून का घूंट पीकर उसने ऊंच-नीच समझाने का बड़ा प्रयत्न किया, पर व्यर्थ।

जब उसने समझ लिया कि पर्वतक किसी भी तरह डिगेगा नहीं तो उठकर बोला, "महाराज, आप वीर अवश्य हैं, किन्तु अहंकार के कारण राजनीति का पालन नहीं करते। किसी को शत्रु या मित्र बनाने के पहले समय और स्थिति का विचार अवश्य करना चाहिए!"

पर्वतक भड़क उठा। मन हुआ कि आम्भीक से पूछे, 'क्या, धन के लिए मातृभूमि को बेच देना ही सबसे बड़ी राजनीति है?' किन्तु तब तक आम्भीक शिविर के बाहर जा चुका था।

पर्वतक विचार-मग्न-सा वहीं खड़ा मनोमंथन करता रहा—'क्या सचमुच, मैं अविवेकी हूं? क्या मैं अहंकारवश राजनीति का उल्लंघन करता हूं?'

आम्भीक के मुंह से पर्वतक के विचार-व्यवहार सुनकर सिकन्दर विचित्र स्थिति में पड़ गया। वह सोचने लगा, 'प्रलोभन देकर तो ईश्वर को भी डिगाया जा सकता है, मनुष्य की क्या गिनती! यह पर्वतक आखिर है क्या? राजा ही तो है। और कोई भी राजा निश्चय ही धन-वैभव और इच्छाओं का दास होता है। सुरा, सुन्दरी और स्तुति के द्वारा उसे सहज ही अनुकूल किया जा सकता है। मैं पर्वतक को इन्हीं अस्त्रों से परास्त करूंगा। यही एकमात्र युक्ति है!

पर्वतक की ओर सिकन्दर इस कारण विशेषरूप से ध्यान दे रहा था कि उसे अब भारत में अपनी विजय सन्दिग्ध प्रतीत होने लगी थी। उसकी पहली टक्कर अश्वकों से हुई थी, उसमें ही यवन सेना को बहुत थकना पड़ा था, और दूसरा मोर्चा पंचनद का था। यहां तो वह एकदम ही विचलित हो गया। इस अनुभव ने सिकन्दर को बता दिया था कि ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर बढ़ेंगे, यवनों को हानि उठानी पड़ेगी; और यदि ऐसे ही टक्कर होती रही तो बहुत संभव है कि मगध तक पहुंचते-पहुंचते यवन सेना का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए!

अप्रतिम शौर्य और साहस के साथ-साथ पर्वतक में कुछ मानवीय दुर्बलताएं भी थीं। आम्भीक उनसे परिचित था। उसने सिकन्दर से कहा, "निस्सन्देह वह वीर है, पर उतना ही महत्त्वाकांक्षी भी है। दम्भ से अपने को मुक्त नहीं कर पाता। विजयप्रिय है और विलासी भी। राज्य-विस्तार और अधिकार का लोभ उसे सदा चंचल करता रहता है। इसी लोभ से तो उसने इतनी शक्ति जुटा रखी है! आप उसको इन वृत्तियों की तुष्टि करके उसे सहज ही वशीभूत कर सकते हैं।"

सिकन्दर ने उस 'विभीषण' का परामर्श स्वीकार कर लिया। वह पर्वतक को डिगाने के लिए नित्य नया मायाजाल बिछाने लगा। हर बार वह किसी नवीन आकर्षण, नवीन सम्मोहन का उपयोग करता, "महाराज पर्वतक! मैं आपको सारे भारत का सम्राट् बना दूंगा। यूनानी सेना आपके संकेत पर चलेगी···विदेशों में आपके नाम की मुद्राएं उसी प्रकार चलेंगी जैसे मेरे नाम की मुद्राएं दूर पश्चिम में नील नदी के तट पर बसे मिस्र के हाटों में चला करती हैं। चलेंगी···मनोरंजन के लिए आपके राजभवन में, यूनान और ईरान की परम सुन्दरी स्त्रियां प्रस्तुत रहेंगी···जहां-जहां मैं विजय करूंगा, आपको

सादर वहां का भ्रमण कराने ले चलूंगा…मेरी राजधानी में आपकी वीरता के शिलालेख और स्तम्भ लगेंगे, जो सहस्रों वर्षों तक हमारी मित्रता का यशोगान करते रहेंगे…।"

अन्ततः पर्वतक का मन डिग ही गया। उसने सिकन्दर से सन्धि कर ली। सन्तोष यही था कि उसने आम्भीक की भांति अपना राज्य और गौरव बेचा नहीं बल्कि सिकन्दर की ओर से याचना की गई, तब उसकी मित्रता स्वीकार की थी। इस मित्रता के बदले सिकन्दर ने अपनी सेना का एक बड़ा भाग उसकी सेना में लगा दिया था और किसी भी कार्य में सर्वप्रथम उसीसे परामर्श लेता था।

एक दिन सिकन्दर ने पर्वतक का मन टटोला, "महाराज! मेरी दिग्विजय की प्रबल इच्छा की पूर्ति आप ही कीजिएगा। बिना आपकी सहायता के यह मेरे लिए सम्भव नहीं।"

"बताइए, मैं आपके लिए क्या करूं?" पर्वतक ने गम्भीर होकर कहा।

"पूर्व की ओर बढ़िए! हमें मगध को पराजित करके चीन तक पहुंचना है। मगध के सिंहासन पर आपको बैठाकर मैं सारे भारत का सम्राट् बना दूंगा, चीन का शासन भी आप ही देखेंगे। केवल पताका मेरी लहराएगी!"

पर्वतक ने पल-भर सोचकर सिकन्दर का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, "मैं प्रस्तुत हूं। आप अभियान कीजिए!"

निश्चय की दृढ़ता व्यक्त करते हुए दोनों महत्त्वाकांक्षियों ने एक-दूसरे का हाथ थाम लिया!

४





सिकन्दर से सन्धि होने के बाद युद्ध रुका, तब पर्वतक की टेढ़ी निगाह अपने शत्रुओं की ओर उठी। अब तो सहायता के लिए यूनानी सेना भी साथ थी। वह अभिमानपूर्वक आस-पास के छोटे-मोटे राज्यों को अपने अधीन करने लगा। इस चपेट में उसका पूर्व मित्र अभिसार-नरेश भी आ गया। पर्वतक का रोप उस पर इस कारण था कि वह पंचनद की सहायता का वचन देकर भी युद्ध के समय नहीं पहुंचा। पर्वतक का विचार था कि वह छल करके सिकन्दर से मिल गया था। इसी कारण अभिसार पर भी पर्वतक के क्रोध का वज्र गिरा।

अभिसार पर पर्वतक के आक्रमण को सिकन्दर ने देखा-समझा अवश्य; किन्तु कुछ कहा नहीं। अभिसार-नरेश की मैत्री और सहायता अब उसके लिए नगण्य हो चुकी थी। परस्पर के विरोध का लाभ उठाना तो उसकी नीति ही थी। सिकन्दर के मौन ने पर्वतक को और भी उत्साहित कर दिया। अन्ततः युद्ध में अभिसार-नरेश मारा गया। पर्वतक ने अभिसार राज्य को पंचनद में विलीन करके सदा के लिए राह का कांटा दूर कर दिया।

सिकन्दर की शक्ति का आतंक सारे उत्तर भारत में व्याप्त हो गया। पंचनद-नरेश जैसा वीर शिरोमणि उसका मित्र था और शशिगुप्त जैसा विलक्षण युवा योद्धा अधीनस्थ छत्रप। किसी में भी यवन विजेता का सामना करने का साहस नहीं रह गया था। जान-बूझकर मृत्यु और सर्वनाश का आवाहन कौन करता! सर्वत्र आशंका, भय, अविश्वास और अस्थिरता का वातावरण छा गया। सब एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते। कोई किसी के प्रति आश्वस्त नहीं था। अज्ञात अनिष्ट का काला नाग सबको अपनी कुण्डली में लपेटकर बैठ गया था।

विजयमद की तरंग में एक दिन पर्वतक के मन में विचार उठा, 'उस आम्भीक को भी समाप्त कर देना चाहिए। इसने द्वेषवश यवनों को मुझ पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था।'

वैर-भावना का यह बीज अभी तक ऊसर में पड़ा हुआ था—आज स्मरण का जल पाते ही वह विषाक्त पौधा बनकर पर्वतक को उत्तेजित करने लगा। उसकी भुजाएं फड़क उठीं; नेत्र लाल हो गए और चेहरे पर प्रतिहिंसा के क्रूर-कठोर भाव उभर आए। प्रतिशोध की भावना इतनी उग्र हो उठी कि पर्वतक ने उसी सप्ताह तक्षशिला पर आक्रमण कर दिया।

आम्भीक ऐसी किसी भी घटना की ओर से निश्चिन्त था। किसमें साहस था कि सिकन्दर के घनिष्ठ मित्र की ओर आंख उठाता! किन्तु सहसा पंचनद की सेना तक्षशिला की ओर झपटी तो वह सहायता के लिए सिकन्दर के पास दौड़ा। सिकन्दर उससे मिला तक नहीं। उसने तक्षशिला के दूत को कोरा-सा जवाब दे दिया, "यह आपलोगों का घरेलू विवाद है, मैं विदेशी भला इसमें कैसे हस्तक्षेप कर सकता हूं!"

आम्भीक के सामने अंधेरा छा गया। निराश होकर उसने

अकेले ही पर्वतक का सामना करने का निश्चय किया।

उधर सिकन्दर, पर्वतक से कह रहा था, "मैं आपसे प्रतिज्ञा कर चुका हूं कि आपका राज्य बढ़ाने में सहायता करूंगा। एक तक्षशिला ही नहीं, कल मगध का साम्राज्य भी तो आपका ही होना है। उसे भी तुरन्त अपने अधिकार में कर लीजिए।"

एक बार फिर युद्ध की ज्वाला धधकी और तलवारों की झनकार वायुमण्डल में गूंज उठी। तक्षशिला का मैदान रुधिर से गीला हो गया। धरती लाशों से पट गई। कौवों और गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड आकाश में मंडराने लगे। खून की प्यासी पड़ौसी सेनाएं एक-दूसरे का संहार करने पर तुली हुई थीं। जान पड़ता था, महाभारत-युद्ध की पुनरावृत्ति हो रही है।

किन्तु पर्वतक की शक्ति अधिक थी। आम्भीक पछताने लगा—यदि मैंने सिकन्दर से मित्रता न की होती तो आज इतना कलंकित, दीन और असहाय क्यों होता? किन्तु अब तर्क-वितर्क का समय न था। वह प्राणों का मोह त्याग कर मैदान में आ डटा। जब मनुष्य जय-पराजय और जीवन-मृत्यु की चिन्ता छोड़कर लड़ता है तो बहुत ही भयानक और दुर्दम हो उठता है। चारों ओर से हताश आम्भीक भी ऐसे ही उग्र होकर युद्ध-रत हो गया।

दोनों सेनाएं टकराईं तो; किन्तु उनका वेग क्षणिक ही रहा। युद्ध दीर्घजीवी नहीं हो सका। तक्षशिला के पास बचा ही क्या था। उसका सारा बल-वैभव तो पहले ही सिकन्दर के चरणों पर न्यौछावर हो चुका था; अब आम्भीक किसके सहारे लड़ता? दुर्बल चरित्र वाले व्यक्ति की आत्मा भी दुर्बल हो जाती है। देश-द्रोही आम्भीक की आत्मा स्वयं को धिक्कार रही थी। हताश और ग्लानि के कारण वह इतना श्रीहीन और विमूढ़

हो गया था, जैसे मिरगी का रोगी हो। उसका एक भी प्रयास काम न आया। दूसरे दिन दोपहर होने के पूर्व ही वह युद्धक्षेत्र में मारा गया—कलंकी जीवन के साथ ही उसके संकटों का अन्त हुआ ! और तीसरे पहर तक्षशिला के राजभवन पर लगी उसकी ध्वजा उखाड़कर फेंक दी गई। उसके स्थान पर दो नई पताकाएं लहरा रही थीं—एक पंचनद की, दूसरी यूनान की।

गृहकलह का एक और घिनौना अध्याय इस प्रकार समाप्त हुआ।

⊙

देश की राजनीतिक गतिविधि का कुशल पारखी आचार्य चाणक्य, इन सारी घटनाओं को गम्भीरतापूर्वक देख रहा था। भारत पर सिकन्दर के आक्रमण की आशंका उसे प्रारम्भ से ही कचोटने लगी थी। इस घातक व्याधि के निवारण का एक मात्र उपाय था, किसी भारतीय द्वारा सिकन्दर का निष्कासन और सारे उत्तरापथ का एक सूत्र में गठन। निश्चय ही इसके लिए किसी असाधारण प्रतिभाशाली, संयमी और साहसी व्यक्ति की आवश्यकता थी। चाणक्य के मन में उसी समय से प्रश्न उठ रहा था—ऐसा व्यक्ति कौन है ?

पहले उसकी दृष्टि पर्वतक पर जमी थी; किन्तु बाद में उसका विचार बदल गया, क्योंकि हर प्रकार से समर्थ होते हुए भी उसमें अनेक दुर्बल वृत्तियां थीं। उनके कारण किसी भी समय भयंकर परिणाम की आशंका थी। और भी छोटे-छोटे कई राजा उसकी दृष्टि में पड़े किन्तु वे भी किसी-न-किसी दुर्गुण के शिकार थे—दुर्बलमन, क्लीव और भीरु थे। किसी पराक्रमी शासक और शक्तिधर सम्राट् की वाली दृढ़ता और तेजस्विता का उनमें नितान्त अभाव था। अन्त में उसकी पैनी आंखें अपने ही अल्पवयस्क शिष्य अश्वक राजकुमार शशिगुप्त पर टिकीं।

जैसे मनचाहा रत्न मिल गया—संतुष्ट होकर उसने निश्चय किया : 'शशिगुप्त ही इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है। उचित वातावरण पाकर वह अत्यंत समर्थ एवं सुयोग्य शासक बन सकता है।'

शशिगुप्त की अपने प्रति अपार श्रद्धा देखकर भी वह सन्तुष्ट था। इस श्रद्धा के कारण वह शशिगुप्त के युवा रक्त की उद्दण्डता को नियन्त्रित करता था। इसी श्रद्धा के कारण इस समय शशिगुप्त अपनी इच्छा के विरुद्ध यवन विजेता की अधीनता सहन कर रहा था और दूर ईरान-भारत की सीमा पर स्थित आरनस दुर्ग के छत्रप के रूप में समय काट रहा था।

सिकन्दर और पर्वतक ने जब मगध पर अभियान करने का निश्चय किया, तब चाणक्य ने समझ लिया कि कुछ करने का समय आ गया है। उसने तत्काल अपना चर आरनस भेजकर एकदम गुप्तरूप से शशिगुप्त को तक्षशिला आने की आज्ञा दी।

शशिगुप्त तीसरे ही दिन तक्षशिला आ पहुंचा, उसका यह आगमन सर्वथा गुप्त था। सन्ध्या को नगर के पूर्वी भाग में स्थित, उसी मन्दिर में गुरु-शिष्य मिले। शशिगुप्त ने प्रणाम करते हुए पूछा, "गुरुदेव आज अत्यन्त गम्भीर लग रहे हैं!"

चाणक्य वास्तव में गम्भीर था। किंचित् मुस्कराकर उसने कहा, "मेरा स्वभाव ही ऐसा है। चिन्ता का वैसा कोई विषय नहीं है।"

शशिगुप्त ने फिर इस विषय में कुछ नहीं कहा। प्रसंग बदलकर बोला, "अब मेरे लिए क्या आज्ञा है? क्या, वहीं आरनस में रहूं?"

"हां, हमारा कार्य वहीं से आरम्भ होगा।"

"यहां तो बड़े परिवर्तन हो गए। तक्षशिला और अभिसार दोनों ही समाप्त हो गए। जो महाराज पर्वतक सारे उत्तरापथ के गौरव थे, वह भी यवनों की मित्रता में फंसकर अपने को भूल

गए हैं।"

असन्तोष की एक तीखी झलक चेहरों पर आई और डूब गई। चाणक्य ने क्रोध से होंठ भींच लिए और पल-भर मौन रहकर रुक्ष गम्भीर स्वर में कहा, "ये सब कायर हैं। इन्द्रियों के दास हैं। जाति, धर्म और देश का अभिमान इनमें नहीं है। जो कुछ था, वह कभी का समाप्त हो चुका है।"

शशिगुप्त चुपचाप उसकी ओर देखता रहा।

"क्या तुम भविष्य के घटनाक्रम का कुछ अनुमान लगा रहे हो?"

शशिगुप्त ने हाथ जोड़ दिए, "आप ही बताएं, आचार्य!"

चाणक्य ने स्पष्ट किया, "तुमको यह तो ज्ञात ही होगा कि सिकन्दर मगध की ओर बढ़ रहा है! पर्वतक वहां का राजा, अर्थात् समूचे उत्तरापथ का सम्राट् बनने को उत्सुक है। वास्तव में सिकन्दर विश्व-सम्राट् होगा और पर्वतक उसका आज्ञाकारी दास।"

"क्या ऐसा सम्भव है, गुरुदेव!"

"संसार में असम्भव कुछ नहीं है, परन्तु अनीति, अन्याय और दुराचार कभी स्थायी नहीं होते। इन्हीं कारणों से पर्वतक का विनाश समय से पूर्व ही होगा और सिकन्दर का अन्त तो निकट ही मानो!"

"क्षमा करें, आचार्य!" शशिगुप्त ने विनम्र स्वर में कहा, "यह तो बड़ा दुस्साध्य प्रतीत हो रहा है। इनका दर्प-मर्दन करने वाला अभी तक तो मेरे देखने-सुनने में नहीं आया। पर्वतक और सिकन्दर—कितने प्रबल हैं ये! सोचिए!"

"सब सोच चुका हूं। जो कुछ मैं कह रहा हूं, वह दुस्साध्य भले ही हो, असाध्य नहीं है। और, इसे साध्य बनाने वाले नाम है—शशिगुप्त! वही इस असम्भव को सम्भव क...

शशिगुप्त की आंखें फैल गईं। उसके मुंह से बरबस निकल पड़ा, "गुरुदेव! मैं···भला मैं ऐसा···।"

"हां, यह ध्रुव की भांति निश्चित है। पर्वतक और अलक्षेन्द्र का पतन तुम्हारे ही हाथों होगा, हां, तुम केवल मेरे निर्देश का पालन करते रहो···।"

शशिगुप्त ने उसके चरणों पर सिर रख दिया, "मैंने अपने को सदैव बहुत ही तुच्छ और लघु करके माना है, आचार्य! यदि मुझमें कुछ है भी, तो वह सब आपका पुण्य-प्रताप और आशीष है। मेरे आत्मबल का आधार यही है कि मैं आपका शिष्य हूं। यही सम्बल लेकर मैं जीवन के दुर्गम पथ पर चल पड़ता हूं।"

चाणक्य ने सस्नेह उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"कल्याण हो! शुभ ही होगा···हां, तुम आचार्य शकटार को जानते हो?"

"अभी तो उनका परिचय नहीं पा सका, देव!" कुछ संकुचित होकर शशिगुप्त ने अनभिज्ञता प्रकट की।

"वह कभी मगध के प्रभावशाली मंत्री रह चुके हैं। वह भी मेरे सहपाठी रहे हैं। मैं, राक्षस और वह, तीनों ने साथ ही तक्षशिला में अध्ययन किया था।"

"क्या मुझे उनके पास जाना है?"

"नहीं, मैंने उन्हें भी यहीं बुलाया है। स्वयं आएंगे। वे भी नन्द से असन्तुष्ट हैं; इसलिए वह भी तुम्हारी सहायता करेंगे।"

शशिगुप्त ने हाथ जोड़कर सिर झुका लिया।

"अब वह समय आ गया है, जिसकी हमें प्रतीक्षा थी। तुम यहां से आरनस जाकर तत्काल विद्रोह कर दो! सिकन्दर की सारी शक्ति अब मगध की ओर लगी है, इस कारण इस समय वह तुम्हारे विद्रोह का दमन भी नहीं कर सकेगा।"

"और यदि लौट पड़ा, तो ?"

"उसे मार्ग में उलझा लिया जाएगा !" चाणक्य ने दृढ़ता से कहा।

शशिगुप्त चुप हो गया।

चाणक्य ने आगे की योजना समझाई, "मगध-विजय सिकन्दर का सुनहरा स्वप्न है। इस समय वह इरावती* पार कर चुका है और विपासा† की ओर बढ़ रहा है। उधर तुम विद्रोह करो, इधर मैं विपासा-तट के क्षत्रियों को उभारूंगा। यवन सैनिक वितस्ता के युद्ध में करारी मार खाकर शिथिल और आतंकित हैं। उधर तुम्हारे विद्रोह की हलचल होगी, इधर विपासा-तट के योद्धाओं की घातक मार—यूनानियों का मनोबल पूरी तरह टूट जाएगा। जैसे भी विपासा के तट पर उन्हें एक पग भी आगे नहीं बढ़ने दिया जाएगा, तब हारकर सिकन्दर को वहीं से यूनान लौट जाना पड़ेगा...।"

"और पर्वतक ?"

"उसकी चिन्ता क्यों करते हो ? उसका पौरुष तो न जाने कब का मर चुका। और तुम्हारे मार्ग में तो वह जरा भी विघ्न नहीं उत्पन्न कर पाएगा।"

"मैं तो उन्हें वीरशिरोमणि समझता रहा हूं।"

"कभी अवश्य ऐसा ही था, किन्तु अब नहीं है। आज तो वह स्वयं भी आम्भीक जैसा ही धर्म भ्रष्ट, राज्य लोलुप, दम्भी और आत्मगौरव से शून्य व्यक्ति है।"

शशिगुप्त एकटक आचार्य की ओर देखता रहा।

चाणक्य ने कहा, "मैं ब्राह्मण हूं। मुझे राज्य अथवा धन का लोभ नहीं है। किन्तु अपने देश, आर्य संस्कृति और धर्म की

* रावी नदी। † व्यास नदी।

ओर मेरा ध्यान सदैव रहता है। लोभ और विलास-वृत्ति ने पर्वतक की सद्भावनाओं को समाप्त कर दिया है। आज का पर्वतक तो इन्द्रियों की तृप्ति के लोभ से अपने गौरव को भी त्याग सकता है।"

"आचार्य ! अभी तक ऐसा कुछ सुना तो नहीं गया। प्रजा के हृदय में उनके प्रति बड़ी निष्ठा है।"

"अब सब कुछ सुना जाएगा और यह सब सुनते ही प्रजा की सारी निष्ठा समाप्त हो जाएगी। अभी यह रहस्य किसी पर प्रकट नहीं हुआ कि पर्वतक, सिकन्दर के सेनापति सेल्यूकस की पुत्री हेलेन पर आसक्त है और उसे किसी भी मूल्य पर प्राप्त करना चाहता है। विडम्बना यह कि हेलेन उससे घृणा करती है।"

"अच्छा ! !" शशिगुप्त आश्चर्य से बोल उठा, "यह भी···"

"मेरे द्वारा दी गई किसी सूचना का एक-एक अक्षर सत्य होता है। हेलेन की घृणा का कारण है, पर्वतक की कायरता ! हेलेन एक वीर पिता की पुत्री है, वह वैसे ही वीर का वरण भी करना चाहती होगी। पर्वतक दो-एक बार उससे प्रेम-निवेदन के लिए गया था, किन्तु हेलेन ने भर्त्सना करते हुए कहा था, 'तुम देशद्रोही, स्वार्थी और कायर हो। जिस भारतीय क्षत्रिय की गौरवगाथा मैंने अपने देश में सुनी थी, वह तुम नहीं हो। ऐसे निर्लज्ज और अस्थिर मनोवृत्ति वाले पुरुष से मैं कैसे प्रेम कर सकती हूं।' पर्वतक क्षुब्ध होकर लौट आया। अब तो सुनता हूं कि प्रतिहिंसा के कारण बावला पर्वतक हेलेन का अपहरण करके उससे प्रतिशोध लेना चाहता है।"

"प्रतिशोध ! और एक स्त्री से ! कन्या से ! यह तो हम क्षत्रियों की दृष्टि में घोर गर्हित भावना है, गुरुदेव···!"

सहसा, किसी की पदचाप सुनाई पड़ी। दोनों मौन हो गए।

"निश्चय ही यह महाप्रतापी और यशस्वी व्यक्ति होगा।"

शशिगुप्त ने झुककर फिर से शकटार की चरणरज ले माथे से लगा ली।

शकटार ने आशीष दिया, "दीर्घजीवी हो, अक्षय कीर्ति मिले।"

शशिगुप्त के अन्तर्मन में जैसे किसी ने शंखध्वनि कर दी, 'इन दो-दो आचार्यों का आशीर्वाद व्यर्थ नहीं जाएगा। तुम्हारा यश निश्चय ही दूर-दूर तक फैल जाएगा!'

सहज शिष्टाचार के बाद वार्तालाप होने लगा।

चाणक्य ने शकटार से पूछा, "मगध की क्या स्थिति है?"

"मगध-साम्राज्य का सूर्य अस्तगत है, और क्या कहूं! सम्राट् नन्द को विलास के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं। कभी आखेट के लिए निकल पड़ता है, तो निरपराध नागरिकों के लिए काल बन जाता है। प्रजा में भीषण असन्तोष व्याप्त है। सम्बल है, तो केवल हमारे सखा राक्षस का अस्तित्व। मंत्री होने के नाते वही सब कुछ संभाले हुए हैं।"

"तुम अब कभी राजसभा में जाते हो?"

"मैं!" शकटार की भवें तन गईं, नेत्र धधकने लगे। वह क्रोध से फुंकार उठा, "मैं तो उसी दिन राजसभा में जाऊंगा, जब अपनी छाती में दहकती आग बुझा सकूं।"

"क्या तुम भी नन्द से अप्रसन्न हो?" चाणक्य ने आशानुकूल उत्तर की सम्भावना से प्रसन्न होकर पूछा।

शशिगुप्त कुछ विस्मय से गुरु की ओर देखने लगा।

"अप्रसन्न?" शकटार ने रुखाई से कहा, "क्या आपको ज्ञात नहीं? मैं नन्द का घोर शत्रु हूं। मेरी प्रतिज्ञा है, जब तक दुरात्मा नन्द का बध नहीं कर लूंगा तब तक उत्तम भोजन-वस्त्र नहीं ग्रहण करूंगा।"

"निश्चय ही उसने तुम पर कोई अनाचार किया होगा !"

"अनाचार ! अनाचार नहीं आर्य, उसने घोर अपराध किया है ! अक्षम्य अपराध ! केवल अपने अहम् की पूर्ति के लिए उस हत्यारे ने मेरी सारी सम्पत्ति छीन ली और मेरे सात निर्दोष पुत्रों को मार डाला। आज मैं जो राह का भिखारी बना, भटक रहा हूं, वह इसी नीच, निरंकुश हत्यारे के अत्याचार के कारण। मुझे अब न तो जीवन का मोह है, न सांसारिक सुखों की कामना। मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य है—नन्द की हत्या; बस। इसके पश्चात् मैं संन्यास लेकर समाधि लगा लूंगा।"

सुनकर चाणक्य को भी क्रोध आ गया। उसने शकटार का हाथ थाम लिया, "मित्र ! मैं ईश्वर को साक्षी देकर प्रतिज्ञा करता हूं, नन्द का सर्वनाश करने में मैं तन-मन से तुम्हें सहयोग दूंगा। एक बार उसने मुझे भी अपमानित किया है। फिर, तुम्हारे सात-सात निर्दोष पुत्रों की निर्मम हत्या ! अब उसकी रक्षा तीनों लोकों में कोई भी नहीं कर सकता।"

शशिगुप्त भी क्षुब्ध हो उठा था। उसने दोनों आचार्यों के प्रति नन्द द्वारा किए गए दुर्व्यवहार का विवरण पहली बार सुना था। उत्तेजित होकर उसने दोनों की चरणरज लेते हुए कहा, "आचार्य, आज्ञा दीजिए ! आप जैसे देवपुरुषों के अपमान का प्रतिशोध नन्द से मैं स्वयं लूंगा।"

दोनों आचार्य प्रसन्न हो गए।

थोड़ी देर तक तीनों में कुछ परामर्श होता रहा, फिर चाणक्य और शकटार वहां से उठकर चले गए। शशिगुप्त अकेला ही विचारमग्न बैठा ही रहा।

५



विपासा नदी का तट।

रात्रि का प्रथम पहर। सदैव निर्जन-नीरव रहने वाले उस प्रदेश में आज अश्रुतपूर्व कोलाहल मचा हुआ था। लगता था कि अकस्मात् ही नदी तट पर माया से कोई नगर बस गया हो।

वह युद्धक्षेत्र था। यूनानी सेना निरन्तर पूर्व की ओर बढ़ने का प्रयास कर रही थी। कल सायंकाल वह विपासा के तट पर आई थी और आज प्रातः उसे पार करने का उपक्रम कर ही रही थी कि पीछे से वाण-वर्षा होने लगी। यद्यपि यवन सेना बहुत बड़ी थी, किन्तु आकस्मिक वाण-वर्षा ने उसे विचलित कर दिया। आक्रामक कहां थे, कितनी दूर थे, इसका भी पता नहीं चल रहा था—यवन सेना एकदम घिर गई। सामने नदी की तेज धारा थी, पीछे घनघोर वाण-वर्षा करते हुए यमदूत। त्राहि-त्राहि मच गई। रात-भर यवन सैनिकों का हाहाकार गूंजता रहा। भोर होने के बाद ही बड़ी कठिनाई से भगदड़ पर नियन्त्रण किया जा सका। दिन में भी वाण-वर्षा रुकी नहीं। हां, इस समय यवनों ने भी कुछ संभलकर युद्ध किया; किन्तु बिना मोर्चा बांधे वे मार खाते रहे। रात्रि में युद्ध-विराम हुआ,

तब यवन सेनापतियों का समूह एकत्र हुआ। आगे के लिए उपाय सोचा जाने लगा।

आक्रामक थे वही विपासा तट के क्षत्रिय, जिन्हें चाणक्य ने राष्ट्ररक्षा की प्रेरणा देकर परम दुस्साहसी बना दिया था। इन क्षत्रियों का कुल भी उसी अश्वक जाति की ही एक शाखा था, जिसके मुट्ठी-भर सैनिकों ने ईरान के युद्ध में यवन सेना के दांत खट्टे कर दिए थे।

अपने शिविर में बैठा सिकन्दर अनुगतों से मन्त्रणा कर रहा था। भारतीय सैनिकों का शौर्य और पग-पग पर पड़ने वाली बाधाओं को देखते हुए, यूनानी सैनिक एकदम हताश हो चले थे। मगध-विजय उन्हें असम्भव-सी दीख रहा थी। किन्तु सिकन्दर की आंखों में विश्व-विजय का स्वप्न मंडरा रहा था। वह किसी भी मूल्य पर अपने सैनिकों का उत्साह अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न करता जा रहा था। उनको मगध की विजय से मिलने वाले अपार धन-वैभव का लोभ दिखा रहा था।

अनुगतों में मुख्यतः प्रधान सेनापति सेल्यूकस, एण्टीगोरस, और पर्वतक थे। दो-तीन प्रौढ़ अवस्था के उप-सेनापति भी बैठे हुए थे। बड़ी देर तक विचार-विमर्श होता रहा। अन्ततः निश्चित हुआ कि कल आधी सेना नदी पार करे और आधी पीछे से आक्रमण करने वाले धनुर्धरों को रोके।' इसी युक्ति से सारी सेना विपासा को पार कर ले। निर्णय हो चुकने पर सभी सिकन्दर का संकेत पाकर अपने-अपने शिविरों में चले गए, केवल पर्वतक रह गया। सिकन्दर चुपचाप बैठा, अपने भूत-भविष्य की शृंखलाएं मिलाने में तल्लीन था। शिविर के द्वार पर उसका प्रमुख रक्षक, भाला लिए सजग खड़ा इधर-उधर देख रहा था।

थोड़ी देर बाद एक साधु दिखाई पड़ा। वह रक्षक के ।न'

"कभी नहीं! स्वप्न में भी नहीं!"

सिकन्दर हतप्रभ हो गया। पल-भर रुककर उसने कहा, "कोई चिन्ता नहीं। जितनी धरती मैंने जीत ली है, वही कम नहीं है। उसी पर राज्य करूंगा!"

"वह भी नहीं रहने पाएगा, अलक्षेन्द्र!"

"क्यों?"

"पतन की वेला जो आ गई है!" साधु ने मन्द मुस्कान के साथ उसकी आंखों में झांकते हुए उत्तर दिया।

सिकन्दर क्रुद्ध हो उठा। उसका अहंकार चीत्कार कर उठा, "पतन! पतन! हर बात में पतन! मैं कहता हूं—सिकन्दर का पतन नहीं हो सकता। यह सब मुझको डिगाने की चाल है! तुम ... से मेरा मनोबल तोड़ने के लिए आए हो!"

...सी प्रकार निर्भय बैठा मुस्कराता रहा।

...की मुस्कान व्यंग्य के विष से सनी प्रतीत ...उपहास कर रहा है। उसने गरजकर

...र आ पहुंचा। उपस्थित हुआ। उसके ...था। सिकन्दर ने आज्ञा दी, "पकड़ ...का भेदिया है।" दोनों सैनिक तल- ...र झपटे। पर्वतक भी बढ़ा, किन्तु ...हुई—साधु तत्क्षण उठ कर खड़ा हो ...में बोला, "जड़!" उसकी आंखों से ...थीं! मुखमुद्रा अत्यन्त कठोर थी। ...ी हुई दृष्टि में जैसे कोई अलौकिक ...पर्वतक जहां के तहां स्तम्भित रह ...र ने स्वयं उठने का विचार ...नहीं सका। साधु की प्रबल

खड़ा होकर न जाने क्या कहने लगा, सम्भवत: वह तुरन्त ही यवन विजेता से मिलना चाहता था। मुख्य रक्षक ने भीतर जाकर सिकन्दर को सूचना दी और उसकी अनुमति पाकर साधु को ले आया।

साधु ज्योतिषी था। परिचय पाकर सिकन्दर ने पूछा, "मेरे विषय में भी कुछ बता सकते हो ?"

सिकन्दर के यश-पराक्रम से सर्वथा अप्रभावित-से दीखते उस साधु की वेश-भूषा विचित्र थी। देखने में वह किसी अघोरी जैसा लगता था। उसने परम निश्चिन्तता के साथ अति संक्षिप्त उत्तर दिया, "हां, अपना हाथ दिखाओ मुझे।"

सिकन्दर ने दोनों हथेलियां उसकी ओर फैला दीं।

"शिव ! शिव !" साधु सहसा बुदबुदाया, फिर सिकन्दर को सम्बोधित करके कहने लगा, "दिन और रात, यही जीवन का क्रम है, अलक्षेन्द्र !"

"तो ?" सिकन्दर उसका आशय नहीं समझ पाया।

"उत्थान और पतन, यही सबके भाग्य में होता है।"

"मेरे भाग्य में क्या है ?"

"वही उत्थान फिर पतन ! तुम्हारे उत्थान की अवधि तो बीत चली, अब पतन की वेला आ रही है, यवनराज !"

"पतन ! तो क्या मेरा पतन भी होगा ?" सिकन्दर चौंक पड़ा। उसके स्वर में आश्चर्य से अधिक शंका का भाव था।

"पतन तो इन्द्र और रावण का भी हुआ था, फिर अलक्षेन्द्र का क्यों नहीं होगा, जब कि वह धरती का एक अति साधारण प्राणी है—हाड़-मांस का पुतला मात्र !"

साधु के निर्भीक स्वर और निर्विकार हंसी से सिकन्दर अभिभूत हो उठा। आशंकित-सा होकर वह बोला, "मैं मगध और चीन की विजय तो कर सकूंगा न ?"

"कभी नहीं ! स्वप्न में भी नहीं !"

सिकन्दर हतप्रभ हो गया। पल-भर रुककर उसने कहा, "कोई चिन्ता नहीं। जितनी धरती मैंने जीत ली है, वही कम नहीं है। उसी पर राज्य करूंगा !"

"वह भी नहीं रहने पाएगा, अलक्षेन्द्र !"

"क्यों ?"

"पतन की वेला जो आ गई है !" साधु ने मन्द मुस्कान के साथ उसकी आंखों में झांकते हुए उत्तर दिया।

सिकन्दर क्रुद्ध हो उठा। उसका अहंकार चीत्कार कर उठा, "पतन ! पतन ! हर बात में पतन ! मैं कहता हूं—सिकन्दर का पतन नहीं हो सकता। यह सब मुझको डिगाने की चाल है ! तुम शत्रुओं की ओर से मेरा मनोबल तोड़ने के लिए आए हो !"

किन्तु साधु उसी प्रकार निर्भय बैठा मुस्कराता रहा।

सिकन्दर को उसकी मुस्कान व्यंग्य के विष से सनी प्रतीत हुई जान पड़ा, साधु मेरा उपहास कर रहा है। उसने गरजकर पुकारा, "मीरान !"

मुख्य रक्षक तुरन्त भीतर आ पहुंचा। उपस्थित हुआ। उसके साथ एक और सैनिक भी था। सिकन्दर ने आज्ञा दी, "पकड़ लो इस साधु को। यह शत्रु का भेदिया है।" दोनों सैनिक तल-वार खींचकर साधु की ओर झपटे। पर्वतक भी बढ़ा, किन्तु तभी एक विलक्षण घटना हुई—साधु तत्क्षण उठ कर खड़ा हो गया और हुंकार-भरे स्वर में बोला, "जड़ !" उसकी आंखों से मानो ज्वालाएं निकल रही थीं ! मुखमुद्रा अत्यन्त कठोर थी।

उसकी हुंकार और जलती हुई दृष्टि में जैसे कोई अलौकिक शक्ति थी। दोनों सैनिक और पर्वतक जहां के तहां स्तम्भित रह गए। जैसे प्रस्तर-मूर्तियां हों। सिकन्दर ने स्वयं उठने का विचार किया; किन्तु वह भी हिल तक नहीं सका। साधु की प्रबल

खड़ा होकर न जाने क्या कहने लगा, सम्भवतः वह तुरन्त ही यवन विजेता से मिलना चाहता था। मुख्य रक्षक ने भीतर जाकर सिकन्दर को सूचना दी और उसकी अनुमति पाकर साधु को ले आया।

साधु ज्योतिषी था। परिचय पाकर सिकन्दर ने पूछा, "मेरे विषय में भी कुछ बता सकते हो ?"

सिकन्दर के यश-पराक्रम से सर्वथा अप्रभावित-से दीखते उस साधु की वेश-भूषा विचित्र थी। देखने में वह किसी अघोरी जैसा लगता था। उसने परम निश्चिन्तता के साथ अति संक्षिप्त उत्तर दिया, "हां, अपना हाथ दिखाओ मुझे।"

सिकन्दर ने दोनों हथेलियां उसकी ओर फैला दीं।

"शिव ! शिव !" साधु सहसा बुदबुदाया, फिर सिकन्दर को सम्बोधित करके कहने लगा, "दिन और रात, यही जीवन का क्रम है, अलक्षेन्द्र !"

"तो ?" सिकन्दर उसका आशय नहीं समझ पाया।

"उत्थान और पतन, यही सबके भाग्य में होता है।"

"मेरे भाग्य में क्या है ?"

"वही उत्थान फिर पतन ! तुम्हारे उत्थान की अवधि तो बीत चली, अब पतन की वेला आ रही है, यवनराज !"

"पतन ! तो क्या मेरा पतन भी होगा ?" सिकन्दर चौंक पड़ा। उसके स्वर में आश्चर्य से अधिक शंका का भाव था।

"पतन तो इन्द्र और रावण का भी हुआ था, फिर अलक्षेन्द्र का क्यों नहीं होगा, जब कि वह धरती का एक अति साधारण प्राणी है—हाड़-मांस का पुतला मात्र !"

साधु के निर्भीक स्वर और निर्विकार हंसी से सिकन्दर अभिभूत हो उठा। आशंकित-सा होकर वह बोला, "मैं मगध और चीन की विजय तो कर सकूंगा न ?"

"कभी नहीं ! स्वप्न में भी नहीं !"

सिकन्दर हतप्रभ हो गया। पल-भर रुककर उसने कहा, "कोई चिन्ता नहीं। जितनी धरती मैंने जीत ली है, वही कम नहीं है। उसी पर राज्य करूंगा !"

"वह भी नहीं रहने पाएगा, अलक्षेन्द्र !"

"क्यों ?"

"पतन की वेला जो आ गई है !" साधु ने मन्द मुस्कान के साथ उसकी आंखों में झांकते हुए उत्तर दिया।

सिकन्दर क्रुद्ध हो उठा। उसका अहंकार चीत्कार कर उठा, "पतन ! पतन ! हर बात में पतन ! मैं कहता हूं—सिकन्दर का पतन नहीं हो सकता। यह सब मुझको डिगाने की चाल है ! तुम शत्रुओं की ओर से मेरा मनोबल तोड़ने के लिए आए हो !"

किन्तु साधु उसी प्रकार निर्भय बैठा मुस्कराता रहा।

सिकन्दर को उसकी मुस्कान व्यंग्य के विष से सनी प्रतीत हुई जान पड़ा, साधु मेरा उपहास कर रहा है। उसने गरजकर पुकारा, "मीरान !"

मुख्य रक्षक तुरन्त भीतर आ पहुंचा। उपस्थित हुआ। उसके साथ एक और सैनिक भी था। सिकन्दर ने आज्ञा दी, "पकड़ लो इस साधु को। यह शत्रु का भेदिया है।" दोनों सैनिक तलवार खींचकर साधु की ओर झपटे। पर्वतक भी बढ़ा, किन्तु तभी एक विलक्षण घटना हुई—साधु तत्क्षण उठ कर खड़ा हो गया और हुंकार-भरे स्वर में बोला, "जड़ !" उसकी आंखों से मानो ज्वालाएं निकल रही थीं ! मुखमुद्रा अत्यन्त कठोर थी।

उसकी हुंकार और जलती हुई दृष्टि में जैसे कोई अलौकिक शक्ति थी। दोनों सैनिक और पर्वतक जहां के तहां स्तम्भित रह गए। जैसे प्रस्तर-मूर्तियां हों। सिकन्दर ने स्वयं उठने का विचार किया; किन्तु वह भी हिल तक नहीं सका। साधु की प्रबल

सम्मोहन शक्ति के आगे उसकी भी एक न चली। स्थिर खड़े साधु की दृष्टि-ज्वाला तीव्रतर होती जा रही थी। सिकन्दर का शरीर सहसा थरथराने लगा। वह इतना शिथिल और पाण्डुर हो गया, जैसे महीनों का रोगी हो।

साधु एकबारगी ठठाकर हंस पड़ा। उसका कर्कश अट्टहास दूर तक वायुमण्डल में गूंज गया, किन्तु विशाल यवन सेना के शिविर में जैसे इन चार व्यक्तियों को छोड़कर और किसी को वह अट्टहास सुनाई ही नहीं पड़ा। सब अपने-अपने भोजन-विश्राम के प्रबन्ध में जुटे रहे।

अगले दिन यवन सेना निष्क्रिय-सी पड़ी रही। सिकन्दर का मन अस्थिर हो उठा था। वह कुछ सोच नहीं पा रहा था—क्या करे? विजय-लालसा और पराजय की आशंका, दोनों के बीच वह झटके खा रहा था।

दोपहर को पर्वतक ने सिकन्दर के शिविर में प्रवेश किया। वह भी बहुत उद्विग्न था, क्योंकि सवेरे अचानक उसी साधु ने आकर पर्वतक से कहा था—"इस म्लेच्छ का भाग्य मन्द हो गया है। तुम इसका साथ छोड़ दो, अन्यथा उसी के साथ अस्त हो जाओगे। मगध की इच्छा है, तो अकेले ही आक्रमण करो, इस विधर्मी के साथ नहीं। यह तुम्हारे सर्वनाश का कारण बन जाएगा!" चेतावनी देकर साधु पर्वतक को कुछ कहने का अवसर दिए बिना ही अदृश्य हो गया था।

सिकन्दर अपनी ही चिन्ताओं में ग्रस्त था। पर्वतक को देखकर उसकी विचारधारा मुड़ गई। मनोभावों को छिपाकर बोला, "क्या आपने मगध के सम्बन्ध में कुछ सोचा? देर होती रही तो शत्रु को संभलने का पूरा अवसर मिल जाएगा।"

पर्वतक कुछ बोल पाता इसके पहले ही एक नायक ने हांफते हुए प्रवेश किया और हड़बड़ाया हुआ बोला, "सम्राट्! आरनस

में विद्रोह हो गया है ! अश्वक लोग घोर उपद्रव मचा रहे है…"

सिकन्दर की आंखें फैल गईं, "विद्रोह !" वह एकटक पर्वतक की ओर देखने लगा, जैसे पूछ रहा हो, 'अब ?'

पर्वतक उठकर खड़ा हो गया। उत्तेजित होकर बोला, "सेनानियों के शिविरों की ओर पधारें, सम्राट् ! कहीं इस सूचना से यहां भी व्यग्रता न फैल जाए…और विद्रोह का दमन करने के लिए भी इसी क्षण आरनस की ओर सेना की कुछ टुकड़ियां भेजनी होंगी !"

लेकिन बाहर का दृश्य देखकर सिकन्दर और भी हताश हो गया—चारों ओर दुर्व्यवस्था छाई थी। सैकड़ों सैनिक नंगी धरती पर लेटे हुए कह रहे थे, "हम कदापि आगे नहीं जाएंगे !" अनेक नायक-छत्रप, घूम-घूमकर उन्हें समझाने का प्रयास कर रहे थे।

यह चोट पर चोट थी—सिकन्दर आहत हो गया। ईरान से ही उसके मार्ग में बाधाएं पड़ रही थीं—पहले तो अश्वकों ने थकाया ; फिर उसे पर्वतक से परास्त होना पड़ा। विपासा पार करने की सोची तो घनघोर बाण-वर्षा के कारण रुकना पड़ा, फिर आरनस के विद्रोह का समाचार मिला और अब तो साथ चल रही अपनी सेना भी विरोध करने लगी है ! तब वह कर ही क्या सकता है ! उत्साह और तेज बुझ जाने के कारण दिग्विजेता सिकन्दर देखते ही देखते वर्षों के रोगी जैसा पीला पड़ गया। चारों ओर से घेर रही आपदाओं के बीच स्वयं को नितान्त असहाय अनुभव करके उसने पर्वतक से कहा, "आइए, पहले हमें अपना कर्तव्य निश्चित करना है, उसी के अनुसार कार्य किया जाएगा।" सामने से सेल्यूकस आ रहा था। सिकन्दर ने उससे सेना के विद्रोह का कारण सुनकर कहा, "शिविर में

आओ, वहीं इसका उपाय सोचूंगा।"

तीनों फिर शिविर में बैठकर परामर्श करने लगे।

कोई एक पहर तक मंत्रणा होती रही। अन्ततः निश्चित किया गया कि सेल्यूकस आरनस पहुंचकर विद्रोह का दमन करें और सिकन्दर इस समय अपने सैनिकों की इच्छा पूरी करने के लिए मकदूनिया लौट जाए। पर्वतक कुछ दिन तक अपनी सेना को और शक्तिशाली बनाए, फिर या तो विजेता सिकन्दर ही सेना लेकर आएगा या सेनापति सेल्यूकस के साथ पर्वतक मगध पर आक्रमण कर देगा।

जब सेल्यूकस और पर्वतक अपने-अपने शिविर की ओर चले गए, तो सिकन्दर ने सेवक से मदिरा मंगवाई और उसकी मादकता में अपने अवसाद को भुलाने का यत्न करने लगा!

थोड़ी देर बाद उसका मस्तिष्क तरंगित हो उठा। युद्धजन्य व्यग्रता और चिन्ता न जाने कहां चली गई। मदिरा के नशे ने उसे थोड़ी देर के लिए सारी समस्याओं से मुक्त कर दिया। वह आलस प्रसन्न भाव से लेट गया। मदिरा का प्रभाव धीरे-धीरे उसके मन-मस्तिष्क को जकड़ता गया। तब विश्वविजेता सिकन्दर नशे की वहक में किसी ब्रह्मज्ञानी की भांति स्वयं से प्रश्नोत्तर करने लगा : 'चिन्ता क्या है ? फिर आ जाऊंगा ! इस समय तो लौट जाना ही उचित है···सैनिक भी ऊब गए हैं···अब की वार नई सेना लाऊंगा···पर्वतक कहता है—सुरा के साथ सुन्दरी भी आवश्यक है···अरे, वह स्वयं हेलेन पर रीझा हुआ है··· ठीक है, इस बार उसके लिए यूनान और ईरान से कुछ सुन्दरियां भी लेता आऊंगा···सुन्दरी ! हां, सुरा और सुन्दरी···हुं··· मैं कैसा अभागा हूं···कहने को मेरे तीन-तीन पत्नियां हैं* फिर भी मैं

* सिकन्दर के तीन पत्नियां थीं—रॅक्साना, स्टाटिरा और मेटोस।

अकेला कहां-कहां भटकता हूं। आह! यदि आज मैं मकदूनिया के राजभवन में होता तो···सैनिक भी क्या करें···वर्षों से घरवार छोड़कर मारे-मारे फिर रहे हैं···पत्नी-बच्चे···सब छूट गए हैं··· अपनों के बीच कौन नहीं रहना चाहता···इसी कारण तो मेरे लिए जान देने को तैयार रहने वाले सैनिकों ने भी पूर्व की ओर बढ़ने से इंकार कर दिया···ओह, होगा···लेकिन उस साधू ने क्या कहा था—पतन? नहीं, नहीं, मेरा पतन नहीं हो सकता···तब यह विद्रोह! चारों ओर से विद्रोह! अश्वकों का विद्रोह! पिपासा के तट पर विद्रोह! स्वयं मेरे सैनिकों का विद्रोह! यह सब क्या है ···मगध···चीन···सिकन्दर! ओ सिकन्दर! दिग्विजय का सपना अधूरा ही रखोगे क्या? बढ़ो दिग्विजेता कूल-बल-कौशल हर युक्ति से काम लो, जैसे भी लक्ष्य प्राप्त हो···कोई उपाय नहीं चलता···तो फिर थोड़ी-सी मदिरा और सही! संसार की सारी समस्याएं इससे सुलझ जाती हैं। चलो विश्वविजेता और पी लो।'

वह उठा। लेकिन शरीर में शक्ति नहीं रह गई थी; पैर लड़खड़ा रहे थे, वह लुढ़क गया। मदिरा का उन्माद असह्य हो गया था। उसे तन-मन की तनिक भी सुधि नहीं रह गई। मृतवत् पड़ा विजेता कोई भयानक स्वप्न देखता रहा।

उधर पर्वतक और सेल्यूकस अपने-अपने क्षेत्र की सुरक्षा के उपाय सोचते हुए कल्पना कर रहे थे—मगध को लेना ही है!

मदिरा बहुत अधिक हो गई थी। सिकन्दर को देर तक चेत नहीं आया। अनगिन स्वप्न आ-जा रहे थे। उनमें न कोई क्रम था, न परस्पर सम्बन्ध। कभी कोई दृश्य आता; कभी उससे सर्वथा भिन्न। विसुधि के अन्तिम पहर में उसने देखा—

भयंकर तूफान चल रहा है। पेड़-पौधे सब उखड़कर इधर-उधर लुढ़क रहे हैं। चारों ओर गहरा अंधेरा छा गया है। धरती डगमगा रही है। सहसा काले रंग का एक पहाड़ उड़ता

हुआ आकर सिकन्दर के सिर पर टंग गया है और उसकी कन्दरा से एक कंकाल निकल कर पूछता है, 'क्यों रे ! अभी तेरा राज-लोभ समाप्त नहीं हुआ ? यह राह छोड़ दे, अत्याचार बन्द कर दे, नहीं तो तुझे आग में जलाया जाएगा। मुझे पहचानता है न ! मैं वही हूं तेरे गुरु* का भतीजा कैलस्थनीज, जिसे तूने सदाचार की सम्मति देने के अपराध में कैद करके कठघरे में ही तड़पा-तड़पाकर मारा था। बोल !' और इसके बाद सहसा वह कंकाल पर्वत सहित अदृश्य हो जाता है···

एक क्षत-विक्षत शव पड़ा है···वीभत्स ! पास ही एक बुड्ढा खड़ा आग्नेय दृष्टि से सिकन्दर को घूरता हुआ धिक्कार रहा है—'अरे कुलकलंक ! तू अब भी समाज को मुंह दिखाता है ! धिक्कार है तेरे अहंकार को ! तेरी विजय-लालसा को ! मैंने तुझे जन्म दिया और तू मुझसे ही शत्रुता रखता है ! यह क्यों नहीं सोचता कि यदि फ़िलिप न होता तो सिकन्दर भी न होता। इस निरपराध पारमिनियन को इसीलिए मार डाला न कि यह मेरा गुणगान करता था ! तुझे अपने पिता की प्रशंसा भी सहन नहीं होती ! नीच, कृतघ्न ! कुत्ता···'

स्वप्नों की आंधी वेग से चल रही है। फिलिप के जाते ही एक बुढ़िया दारुण स्वर में चीत्कार करती हुई आकर, कहती है—'अरे पापी, मैं तेरी धाय थी ! मैंने ही तुझे पाल-पोसकर तलवार थामने लायक बनाया था ! और, तूने मेरे भाई की मेरे प्यारे क्लीट्स की हत्या कर डाली ! सीरिया के युद्ध में अपने प्राण संकट में डालकर इसी ने तुझे बचाया था, और तूने ईर्ष्या के कारण इसका बध कर दिया ! देख, अब यह तुझसे बदला लेने

* सिकन्दर के गुरु का नाम था—एरिस्टाटल (अरस्तू)। उसकी गणना विश्व के महान् दार्शनिकों में होती है।

के लिए आया है ! सावधान हो जा…'

…आंधी थम रही है। सहसा अंधकार मिट जाता है और सर्वत्र तीखे लाल रंग का प्रकाश फैल जाता है। सामने ईरान के बैक्ट्रिया-युद्ध का दृश्य उभर रहा है—वहां का जनप्रिय सम्राट् वेसस बन्दी रूप में सामने पड़ा है। युद्ध में उसके अंग क्षत-विक्षत हो गए हैं। यूनान की अधीनता स्वीकार न करने पर उसे सिकन्दर कोड़े लगवा रहा है। सम्राट् वेसस अडिग है। हर कोड़ा पड़ते ही वह चिल्ला उठता है, 'कुछ भी हो, मैं तेरे सामने झुक नहीं सकता !' क्षुब्ध होकर सिकन्दर उसका अंग-अंग कटवा देता है। वेसस के रुण्ड-मुण्ड कुत्तों के आगे फेंक दिए जाते हैं…

…यवन सेना पूर्व की ओर बढ़ रही है। सिकन्दर मगध-विजय के लिए उतावला है। आंधी के साथ वह स्वयं भी उसी ओर उड़ा जा रहा है। एकाएक राह में काले रंग का एक बड़ा भारी पहाड़ आकर अड़ गया। सिकन्दर का घोड़ा उससे टकरा कर उलट जाता है। स्वयं सिकन्दर धरती पर गिर पड़ता है। उसके हाथ-पैर टूट गए हैं, सिर फट गया है, खून बहने लगा है और वह चिल्ला-चिल्लाकर रो रहा है। थोड़ी देर पहले देखी हुई प्रेतात्माएं—क्लीट्स, वेसस और पारमिनियन आदि न जाने कहां से फिर आ जाती हैं। वे भयानक अट्टहास कर रहे हैं। अपने-अपने जलते हुए भाले तानकर वे सिकन्दर की छाती में भोंक देती हैं और कर्कश स्वर में चीखती है –'ले देख ! अत्याचारी का अन्त कैसा होता है…'

एक साथ पांच-पांच दहकते हुए भालों की चुभन अनुभव करके सिकन्दर तड़प उठा। स्वप्न भंग हो गया साथ ही वह चौंककर उठ बैठा। भय के मारे उसका रंग पीला पड़ गया था, माथे पर पसीने की बूंदें झलक आई थीं। छाती तेजी से

रही थी। सारा शरीर पत्ते की तरह कांप रहा था। उसने आतंकित नेत्रों से इधर-उधर देखा, कहीं कुछ भी तो नहीं है! वह तो अपने शिविर में ही है, लेकिन इस हालत में सवेरा हो चुका था। बाहर पेड़ पर बैठा कौवों का झुण्ड तीखे कर्कश स्वर से कांव-कांव कर रहा था।

⊙

उस दिन भी युद्ध नहीं हुआ। अन्तर्द्वन्द्व ने सिकन्दर को एकदम विचलित कर दिया था। लोभ और विघ्न दोनों उसे प्रभावित कर रहे थे। अन्ततः विघ्नों की विजय हुई और दूसरे ही दिन यूनानी सेना विपाशा के तट पर चिह्न स्वरूप अनेक सैनिकों के छिन्न-भिन्न शव और लहू से गीले शस्त्र छोड़कर पश्चिम की ओर लौट पड़ी।

दिग्विजय के लिए निकली हुई यूनानी सेना का भारत की सीमा पर ही भग्नमनोरथ होकर स्वदेश के लिए किया गया यह भारतीयों की वीरता का अप्रतिम उदाहरण है।

विरोधियों के लिए सेनापति सेल्यूकस ने नीति निर्धारित कर ली थी—नर्वतक को अभी छेड़ना ठीक नहीं है। दूसरी बार आकर इसे मगध में ही खपा दिया जाएगा। रह गया शशिगुप्त, उसे मैं ईरान में रहते हुए, स्वयं ही कुचल दूंगा। उसके साथ सारे अश्वक बन्दी बना लिए जाएंगे। उस उद्दण्ड जाति को जड़ से उखाड़ देना ही उनकी धृष्टता का उचित दण्ड होगा।

सिकन्दर सम्भवतः अब किसी से भी टक्कर लेने की मनःस्थिति में नहीं था, इस कारण उसने समुद्री-मार्ग द्वारा यात्रा का निश्चय किया। फिर भी उसने लोभवश मार्ग में सिंधु प्रदेश में बसी मालव जाति पर आक्रमण कर दिया। किन्तु वीर मालवों ने परास्त होते-होते यूनानी सेना का एक बड़ा भाग काट डाला। साथ ही स्वयं विजेता को भी घातक रूप से आहत

कर दिया। इसलिए सिकन्दर को आशंका हुई कि कहीं ऐसा न हो, मुझे वापस जाते देखकर शत्रुओं की सेना पीछे से टूट पड़े। न जाने क्यों, उसे अब हर पल मृत्यु का भय सताया करता था। अपने सैनिकों के प्रति उसके मन में सन्देह और अविश्वास की भावना तो भर ही गई थी। उनमें न तो अब विजय का उत्साह था, न पौरुष। युद्ध का प्रसंग आते ही वे विद्रोह के लिए सन्नद्ध हो जाते। मालवों के साथ छिड़े युद्ध के समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि यूनानी सैनिक आपस में ही लड़ मरेंगे। सेल्यूकस आरनस की ओर चला गया था, अतः उसके स्थान पर यवन सेना का अधिकारी नियारकस नामक सेनापति नियुक्त किया गया था। उसने बड़े कौशल से अपने सैनिकों को शान्त किया और उन्हें किसी प्रकार नियन्त्रित करता हुआ दलबल सहित समुद्र-तट पर (आधुनिक करांची के पास) पहुंच गया।

सिकन्दर ने अपना वेश परिवर्तित कर रखा था। वह नहीं चाहता था कि सबको मेरा परिचय मिले। सैनिकों तक को इस भेद की जानकारी नहीं थी।

सावन का महीना था। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। साथ ही तूफान उठ रहे थे। ऐसे वातावरण में समुद्र-यात्रा कैसे की जाती! पूरे एक दिन और एक रात प्रतीक्षा करने पर भी प्रकृति का कोप शान्त नहीं हुआ। उसकी भयानकता से सिकन्दर का साहस डगमगा उठा। उसने जल-मार्ग छोड़कर थल-मार्ग से ही जाने का निश्चय किया। सेनापति नियारकस को सिकन्दर के विचार-परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ—अरे! यहां तक आकर फिर थल-मार्ग! कहीं सम्राट् विक्षिप्त तो नहीं हो गए हैं! उसने कहा, "थल की राह जाना तो अब और भी कष्टकर होगा! इधर आने से सेना को व्यर्थ में इतना समय गंवाना पड़ा…!"

"कुछ भी व्यर्थ नहीं हुआ !" सिकन्दर अपनी दुर्बलता प्रकट नहीं होने देना चाहता था। बोला, "तुम समुद्री-मार्ग से जाओ। उन सैनिकों को भी तुम्हीं अपने साथ लेते जाओ, जो रोगी और निर्बल हो गए हैं। मैं आधी सेना के साथ थल-मार्ग से आऊंगा।"

नियारकस ने वास्तविक कारण समझ लिया, लेकिन उसने अपनी भावना प्रकट नहीं होने दी। विक्षुब्ध दिग्विजेता की ओर आंख उठाने का भी साहस किसी को नहीं होता था। वह सम्राट् की इच्छा के सामने सिर झुकाकर यात्रा की व्यवस्था में जुट गया।

अगले दिन यूनानी सेना दो दलों में विभक्त होकर अलग-अलग मार्गों से यूनान की ओर चली। एक का नायक सेनापति नियारकस था, जिसके साथ रोगी, पंगु और दुर्बल सैनिकों का समूह था। इस दल ने समुद्री-मार्ग से प्रस्थान किया। दूसरे का संचालक स्वयं सिकन्दर था। इस दल में सशक्त सैनिक थे; यद्यपि उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं थी, क्योंकि सेना का एक बड़ा भाग सेल्यूकस के साथ ईरान और भारत में विजित क्षेत्र की रक्षा के लिए रह गया था। सिकन्दर थल-मार्ग पर अग्रसर हुआ।

दोनों समूह बड़ी तेजी से बढ़ रहे थे। उन्हें किसी भी प्रकार यूनान पहुंचना था। अब यही उनका एकमात्र लक्ष्य था।



६



आरनस का विद्रोह साधारण नहीं था। उसके पीछे एक सुचिन्तित और सुसंगठित आयोजन था। चाणक्य जैसा कूट-नीतिज्ञ उसका प्रेरक था और शशिगुप्त जैसा प्रतापी योद्धा उसका नेता। तक्षशिला के सारे अश्वक योद्धा उसमें सम्मिलित थे। उनकी दृढ़ता और पराक्रम ने यवनों के छक्के छुड़ा दिए। आरनस स्वतन्त्र हो गया और दुर्ग पर आर्य जाति की विजय-पताका फहराने लगी।

चाणक्य उन व्यक्तियों में से था, जो सोते-जागते—हर पल अपने लक्ष्य का चिन्तन करते रहते हैं। उसकी दूरदर्शिता असं-दिग्ध थी और देश-प्रेम तो जैसे उसके रोम-रोम में व्याप्त था। प्रतिक्षण वह देशहित के विचारों में ही मग्न रहता—आज मेरे देश की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई है। छोटे-छोटे राज्य हैं जो आपस में लड़ते हुए, एक-दूसरे का सर्वनाश करने में ही लगे रहते हैं। प्रजा का मनोबल टूटता जा रहा है। जीवन और जीविका की सुविधाएं दुर्लभ हो गई हैं। देश का कला-कौशल और व्यापार-व्यवस्था रुग्ण हो गई है। विश्वास और दृढ़ता के भाव समाप्त होते जा रहे हैं। कोई अपने को सुरक्षित नहीं अनु-

भव करता। शासक वर्ग नीति-अनीति की चिन्ता किए बिना अपने सुख और विलास के लिए कुछ भी करने को उतारू है। परिणामस्वरूप प्रजा कर्तव्य-निष्ठा से मुंह मोड़कर देश और जाति के गौरव के प्रति उदासीन होती जा रही है। इस विकट स्थिति का एक ही विकल्प है—समूचे देश को एक प्रबल शासक और एक झण्डे के अधीन संगठित करना। बिखरी हुई शक्ति को समेटकर एक किए बिना शासन-सूत्र में दृढ़ता नहीं आएगी।

सीमा प्रदेश से ही सिकन्दर का पलायन देश-प्रेमियों के लिए बहुत सुखद घटना थी। आरनस-विजय ने शशिगुप्त का उत्साह बढ़ा दिया था। शक्तिशाली यवनों को पराजित करने वाले सफल विद्रोही के रूप में वह रातों-रात लोकप्रिय हो गया। दूर-दूर तक उसके साहस एवं रण-कौशल की सराहना होने लगी। अब वह लोगों की श्रद्धा और आदर का पात्र बन गया था।

उसने आस-पास के निर्बल राज्यों को भी अपने साथ संगठित करने का विचार किया। सबसे पहले उसका ध्यान 'कारोट' दुर्ग की ओर गया। वह आरनस के और पश्चिम में था। ईरान-विजय के पश्चात् सिकन्दर ने वहां का क्षत्रप एक यूनानी को नियुक्त किया था। उसका नाम था—निकेनोर। उसकी गणना यवन सेना के प्रमुख वीरों में होती थी। आस-पास का ईरानी प्रदेश उससे आतंकित रहता था। शशिगुप्त ने पहले इसी कांटे को दूर करने की ठानी। उसने अपने परम विश्वासी नायक रामदेव को बुलवाया।

रामदेव ब्राह्मण था। उम्र पचास के लगभग थी, किन्तु शरीर से वह तीस वर्ष का बलिष्ठ युवक जान पड़ता था। शशिगुप्त को स्वामी और सन्तान दोनों ही भावनाओं से मानता था। उसके प्राण रहते, कोई शशिगुप्त को छू ले, यह असम्भव ही था।

वह तत्काल आ पहुंचा। शशिगुप्त ने पूछा, कारोट के छत्रप निकेनौर के पास कितनी सेना होगी ?"

रामदेव ने पल-भर सोचकर निश्चय-भरे स्वर में बताया, "महाराज ! वहां बहुत कम सैनिक हैं—कुल तीन सौ पंदल और सौ घुडसवार, बस ! पंदल सैनिकों में यूनानी नाम मात्र को ही है। शेष तो ईरानी ही भरे हैं। यवनों की संख्या किसी भी प्रकार पचास से अधिक नहीं है।"

"अच्छा ! और घुड़सवारों में ?" शशिगुप्त का उत्साह बढ़ा।

"घुड़सवार तो सारे ही यवन हैं, महाराज ! सिकन्दर बड़ा चतुर है। उसने घुड़सवारों में इसलिए यूनानी ही यूनानी भरे हैं कि यदि कभी पंदल ईरानी सैनिक विद्रोह करें, तो उन्हें क्षण-भर में ही रौंद डाला जाए !"

"हूं। यही बात है !" कहकर शशिगुप्त विचार-मग्न हो गया। संकेत पाकर रामदेव विदा हो गया।

अगले ही दिन सहसा कारोट दुर्ग पर घेरा पड़ गया। अश्वक-सेना जय-जयकार करती हुई उसके द्वार तोड़ने का प्रयास करने लगी। समाचार पाते ही निकेनौर अपनी टुकड़ी लेकर मुख्य द्वार की रक्षा में जुट गया, किन्तु अश्वक दल प्रचण्ड वेग से आघात कर रहा था। उसने देखते ही देखते कारोट का द्वार तोड़ डाला और भीतर धंसकर शत्रु-सेना पर टूट पड़ा।

निकेनौर साहसी तो था, किन्तु वीर से कहीं अधिक वह अभिमानी था। उसने बढ़कर ललकारा, "जिसको अपनी तलवार का बड़ा घमण्ड हो, आए मेरे सामने !" और घोड़ा दौड़ा-दौड़ाकर अश्वक सेना को रौंदने लगा।

शशिगुप्त निकट ही युद्धरत था। निकेनौर की चुनौती कान में पड़ते ही उसने घोड़े को एड़ लगाई और सिंह की भांति दहाड़ता हुआ दम्भी यूनानी छत्रप के सामने आ डटा। "सावधान

यवन ! आ, देख मेरी तलवार का पानी, यह तेरा लहू चाटेगी !" साथ ही उसने एक भरपूर वार किया।

निकेनोर अभी तक किसी मोर्चे पर परास्त नहीं हुआ था। शशिगुप्त का वाक्य उसे तीर की तरह चुभा साथ ही उसकी तलवार बिजली की तरह लपलपाकर गिरती दीखी। तत्काल घोड़े को उछालकर वार बचाते हुए उसने शशिगुप्त को लक्ष्य करके अपना भाला फेंका, "ले, विश्वासघाती ! हमारे महान् ने तुझे छत्रप बनाया था और तू कृतघ्न विद्रोह कर रहा है !"

एक-एक पल निर्णायक था। दोनों सेनापति युवक थे—अपनी-अपनी जन्मभूमि के अभिमानी और एक-दूसरे के घोर शत्रु। दोनों अपना मार्ग निष्कण्टक करके विजयश्री को पाने के लिए उन्नत हो उठे। साहस और पराक्रम की अग्नि-परीक्षा के ऐसे कठिन क्षण जीवन में कम ही आते हैं। निकेनोर का भाला मानो साक्षात् यमराज का भाला हो—कुशल अश्वारोही शशिगुप्त ने अन्तिम पल में अपने घोड़े को ऐसे लाघव से उछाला कि भग्नमनोरथ निकेनोर झटका न संभाल पाने के कारण भाले के साथ स्वयं भी धरती पर आ गिरा। सिर के बल गिरने के कारण उसकी खोपड़ी फट जाती, किन्तु भाले की टेक लेकर वह संभल गया और बड़ी फुर्ती से पैंतरा बदलकर अलग खड़ा हो गया। अपने घोड़े की ओर देखता हुआ वह ताल ठोंककर हुंकार उठा। निकेनोर पैंतरा बदल-बदलकर बड़ी चतुराई से अपने घोड़े के निकट पहुंच गया। वह अब उछलकर घोड़े पर सवार होने के लिए झुककर हुमसने ही जा रहा था कि शशिगुप्त कूदकर उस पर टूट पड़ा—जैसे आकाश से कोई उल्का-खण्ड गिर पड़ा। दोनों योद्धा गुंथ गए। उनके रक्त पिपासु अंग-अंग एक-दूसरे पर घातक प्रहार करने लगे।

निकेनोर वय, शरीर और अनुभव में शशिगुप्त से ड्योढ़ा

पड़ता था; फिर भी शशिगुप्त को न कोई शंका, न भय। वह पूरे आत्मविश्वास के साथ शत्रु को परास्त करने की चेष्टा कर रहा था।

बड़ी देर तक गुत्थम-गुत्था रहने के बाद भी उस अल्प वयस्क युवक का निकेनौर कुछ न बिगाड़ सका तो और बौखलाया। सहसा उसने कमर से कटार निकाल ली—एक पल और··· बस···उसके बाद यूनानी सेना में उत्सव मनाए जाते, और शायद शशिगुप्त की मृत्यु की सूचना पाकर स्वयं विजेता सिकन्दर खुशी से नाच उठता–निकेनौर तो क्षत्रप से एकदम सम्राट् बनने का स्वप्न देख रहा था···। किन्तु शशिगुप्त ने वह एक पल हाथ से नहीं जाने दिया। उसने विद्युत्-गति से निकेनौर की कलाई पकड़कर इस तरह ऐंठ दी कि क्षत्रप की पूरी भुजा ही उखड़कर झूल गई। निकेनौर पीड़ा से चीत्कार कर उठा। कटार छूटकर गिर पड़ी किन्तु निकेनौर ने तड़पकर बाएं हाथ से शशिगुप्त के माथे पर एक मुक्का मारा। मुक्का दाहिनी भौंह पर वज्र की तरह गिरा—भिन्नाकर शशिगुप्त ने झपटकर निकेनौर को उठाया और अपने सिर से भी ऊंचे ले जाकर उसे दुर्ग की पथरीली दीवार पर दे मारा—निकेनौर की चिंघाड़ गूंजी पर अचानक ही टूट गई। पत्थर की दीवार से टकराकर उसकी खोपड़ी चूर-चूर हो गई। खून में सनी हड्डियां इधर-उधर बिखर गईं। खून के छींटे उछलकर शशिगुप्त के माथे पर पड़े मानो शशिगुप्त की विजय का अभिषेक हो।

यूनानी सैनिकों के पैर उखड़ गये। जिसे जिधर राह मिली, भाग निकला। आधी घड़ी के भीतर ही अश्वकों ने कारोट दुर्ग पर अपनी विजय पताका फहरा दी।

ईरानी सैनिकों को तो यवनों की दासता से छुटकारा मिला। वे प्रसन्नतापूर्वक शशिगुप्त की अधीनता में आ गए। उनका

विश्वास था कि अश्वकों के साथ मिलकर हम क्रूर सिकन्दर की सेना से अपने सम्राट् वेसस की मृत्यु का बदला ले सकेंगे।

⊙

उसी संध्या को समाचार पहुंचा कि सिकन्दर की सेना ने पिपासा के तट पर विद्रोह कर दिया था और अब वह मगध की ओर न बढ़ कर समुद्री-मार्ग से यूनान की ओर लौट रहा है।

यह सूचना अश्वकों और ईरानियों के लिए समान रूप से उत्साहवर्धक थी। दूसरे दिन प्रातःकाल शशिगुप्त ने पश्चिम की ओर अभियान किया। उसका लक्ष्य था, ईरान की धरती से यूनानियों को उखाड़ फेंकना। जिस ईरानी योद्धा ने इस अभियान की सूचना पाई वही शशिगुप्त का साथ देने के लिए आ पहुंचा। सहस्रों ईरानी सैनिक उसकी सेना में आ जुटे। किन्तु अगले दिन मार्ग में एक विघ्न पड़ गया। सिकन्दर के प्रधान सेनापति सेल्यूकस को शशिगुप्त के इस अभियान की सूचना अकस्मात् ही मिल गई। वह एकदम से घूम पड़ा और सीधे शशिगुप्त के सामने मैदान में आ डटा। उसने ललकार कर चेतावनी दी, "जहां हो, चुपचाप वहीं से लौट जाओ। मैं उसी दिग्विजेता सिकन्दर महान् की विशालवाहिनी का सेनापति हूं, जिसने पंचनद से आगे तक की धरती रौंद डाली!"

उत्तर में शशिगुप्त ने सिंहगर्जना करते हुए उसे धिक्कारा—"हां, हां, मैं जानता हूं, तुम उसी कायर सिकन्दर के सेनापति हो, जो पिपासा को पार करने का साहस भी न कर सका और आज इतना त्रस्त है कि अपने जीते हुए राज्यों के बीच से न होकर, समुद्र की राह से चुपचाप यूनान भागा जा रहा है।"

शशिगुप्त को उत्तर न देकर सेल्यूकस ने यवन सैनिकों को शत्रुपर टूट पड़ने का संकेत किया और स्वयं उन्हीं के बीच लुप्त हो गया।

यह भी एक चाल थी ! सेल्यूकस ने पहले से ही अपनी सेना को दो भागों में बांट रखा था—एक भाग वहीं लड़ने के लिए छोड़कर वह दूसरे भाग को साथ लेकर उसी रात पश्चिम की ओर निकल गया। उसमें इतना भी साहस नहीं रह गया था कि अश्वकों और ईरानियों से टक्कर लेने को रुकता। विद्रोही ईरानी तो सम्राट् वेसस की दारुण यातना और पीड़ा-भरी मृत्यु की याद करके तड़प-तड़प उठते। वे प्रतिहिंसा की भावना से बौखलाए हुए मात्र सिकन्दर ही नहीं, एक-एक यूनानी के रक्त के प्यासे हो रहे थे।

दूसरे दिन जब ज्ञात हुआ कि सेल्यूकस चुपचाप खिसक गया है तो अश्वकों और ईरानियों का मनोबल और दृढ़ हो गया। मैदान में खड़ी यूनानियों की सेना को उन्होंने दम-भर में उखाड़ दिया और उन्हें ईरान की सीमा से बाहर खदेड़कर वे लौट आए।

उस समय शशिगुप्त को इतने पर ही संतोष करना पड़ा। आचार्य चाणक्य की अनुमति के बिना उसे अधिक दुस्साहस करना उचित नहीं लगा।

वैसे भी उसका तात्कालिक उद्देश्य पूरा हो गया था—उसने बल-संग्रह भी कर लिया था, साथ ही ख्याति भी अर्जित की थी। उसके सैनिक भी इस विजय से बहुत कुछ संतुष्ट हो गए थे। शशिगुप्त के लिए आर्यावर्त के शक्ति-संगठन का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण था। इस विषय में आचार्य चाणक्य से तक्षशिला में भेंट करके ही आगे का कार्यक्रम निश्चित किया जा सकता था। उसकी यह कामना प्रायः करवट लेती रहती—सिकन्दर तो भाग ही गया, हां, सेनापति सेल्यूकस ईरान में ही है; उसे परास्त करना चाहिए।

उधर, ईरान की सीमा और आरनस तथा कारोट के दुर्गों की रक्षा के लिए रामदेव अपनी टुकड़ी के साथ बड़ी सतर्कता से आस-पास की टोह ले रहा था।

७



पर्वतक उत्तरापथ का सबसे अधिक शक्तिशाली और साहसी राजा था। कुछ दुर्बलताएं होने पर भी वह तत्कालीन भारत का श्रेष्ठ शासक था। चाणक्य के प्रति उसके मन में सम्मान की भावना थी। किन्तु चाणक्य ने अपने उद्देश्य के लिए पर्वतक जैसे समर्थ राजा की अपेक्षा लगभग साधनहीन और अल्पवयस्क शशिगुप्त को अधिक योग्य समझा। पर्वतक का अहम् और राज्य-लोभ चाणक्य की दृष्टि में ऐसे दुर्गुण थे, जो किसी भी राज्य के पतन का कारण बन सकते हैं। एक-दूसरे के प्रति अनुकूल-प्रतिकूल भाव रखते हुए भी वे दोनों आर्यावर्त के संगठन का ही स्वप्न देख रहे थे।

चाणक्य का ध्यान हर बार शशिगुप्त पर ही केन्द्रित होता था। वह सोच रहा था—इस युवक में वे समस्त गुण विद्यमान हैं, जो किसी विशाल साम्राज्य के सुयोग्य शासक में होने चाहिए। निश्चय ही, इसके शासन में देश सुरक्षित और सुखी रहेगा।

उधर, पर्वतक की कल्पना थी—सिकन्दर तो चला ही गया है। अब यदि मैं स्वयं मगध पर अधिकार कर लूं तो पूरे आर्यावर्त का सम्राट् हो जाऊंगा। यह मोहक स्वप्न उसके उत्साह को

प्रतिदिन बढ़ाता रहता था।

एक दिन चाणक्य सहसा ही उससे मिला। सहज शिष्टाचार के बाद उसने बिना किसी प्रसंग के कहा, "महाराज ! अब समय आ गया है !"

पर्वतक कुछ समझ नहीं सका। पूछा—"किस बात का समय, आचार्य ?"

"संगठित होकर मगध पर आक्रमण करने का !"

"मगध के विरुद्ध कौन मेरे साथ संगठित हो सकेगा, आर्य !" पर्वतक के स्वर में आश्चर्य के साथ कुछ-कुछ निराशा भी झलक रही थी।

"सभी होंगे ! मगधराज नन्द के अनाचार से तो सारी प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही है।"

"किन्तु वह प्रजा तो मगध में है; मेरे साथ वह पंचनद में कैसे संगठित होगी ?" पर्वतक ने सशंक दृष्टि से आचार्य की ओर देखा।

"वह तो हो जाएगी ; किन्तु पहले यहां के नरेश तो एकत्र हों !"

पर्वतक के होंठों पर फीकी हंसी की रेखाएं उभर आईं, "यहां ऐसा कौन है, आचार्य ? सिकन्दर ने सभी को कुचल डाला है। मगध की ओर आंखें उठाकर देखने का साहस और किसी में तो दीखता नहीं !"

चाणक्य ने एक पल मौन रहकर मानो सुझाव दिया, "शशि-गुप्त तो है !"

"शशिगुप्त !" पर्वतक ने घोर आश्चर्य से पूछा, "वही अश्वक राजपुत्र न ? भला वह इतना साहस कर सकेगा ? और किस बल पर ?"

"उसकी वीरता और साहस से अभी तक आप परि-

नहीं है, महाराज ! उसने तो सिकन्दर को भी आतंकित कर दिया था। और यह सूचना तो आपको मिली ही होगी कि शशिगुप्त ने ही पश्चिमी सीमा प्रदेश से सारे यवनों को खदेड़ कर आरनस का पूरा क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया है। कारोट के आगे यवन सेनापति सेल्यूकस ने अपनी सेना के साथ उसे रोकना चाहा था; किन्तु उसी रात थोड़ी-सी सेना लेकर उसे भी ईरान भागना पड़ गया ! इस घटना से उसके बल-पराक्रम का अनुमान लगाना कठिन तो नहीं है !" चाणक्य मुस्कराया।

यह समाचार पर्वतक के लिए नया था। वह चकित होकर बोला, "सेनापति सेल्यूकस को रणभूमि से हट जाना पड़ा ! अद्भुत है ! तब तो निश्चय ही शशिगुप्त प्रतापी है ! उसके साहस की मैं भी प्रशंसा करूंगा।"

"वह कल स्वयं यहां आ रहा है, महाराज !"

पर्वतक चुप रहा; किन्तु उसकी शंका-भरी दृष्टि में एक प्रश्न स्पष्ट था, 'यहां आ रहा है ? किस उद्देश्य से ?'

चाणक्य ने शंका-समाधान करने के लिए स्पष्ट किया, "वह मेरा शिष्य है न ! सीमा विजय के बाद मेरे दर्शन करने आ रहा है।"

"तब तो उत्तम संयोग है, आचार्य ! यदि आप अवसर दें तो मैं शशिगुप्त का सत्कार करूंगा।"

चाणक्य ने स्वाभाविक गम्भीरता के साथ कहा, "इस अवसर का उपयोग उचित रूप में होना चाहिए। इस समय वह सीमा पर विदेशियों को परास्त करके आ रहा है, अतः आप अपने राज्य के प्रतिनिधियों सहित ससम्मान उसका स्वागत कीजिए। गुणी का सम्मान गुणी ही तो कर पाता है। शशिगुप्त का आदर करके आप भी गौरव पाएंगे। सारा देश आपकी प्रशंसा करेगा।"

दूरदर्शी पर्वतक ने तुरन्त यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। और अगले दिन जब शशिगुप्त ने नगर में प्रवेश किया तो वहां कल्पनातीत दृश्य था। अपने सभासदों तथा सहस्त्रों मान्य नागरिकों सहित, राजसी सज्जा में स्वयं पंचनद-नरेश, वीर शिरोमणि पर्वतक उसका स्वागत करने आए थे। उनके दाईं ओर खड़े आचार्य चाणक्य अभयमुद्रा में हाथ उठाए मुस्करा रहे थे! जयनाद और वाजों का स्वर आकाश मे गूंज रहा था। नागरिकों में ऐसा उत्साह था मानो कोई समारोह हो।

शशिगुप्त का स्वागत करके पर्वतक उसे ससम्मान अपने राज-भवन में ले आया। चाणक्य भी साथ में था।

वे कई दिनों तक पर्वतक के अतिथि रहे। नित्य तीनों व्यक्ति एकांत कक्ष में बैठकर मगध-युद्ध की योजना पर विचार करते। निर्णय लेते, दूसरे दिन उसी के अनुरूप सैन्य-सज्जा एवं अभियान की तैयारी के आदेश दिये जाते। ठीक सत्रहवें दिन पर्वतक ने सेनासहित मगध की ओर प्रस्थान कर दिया। शशिगुप्त साथ था। दोनों की सेनाएं विजय-स्वप्न देखती हुई पड़ाव पर पड़ाव पार करती हुई तीव्र गति से मगध की ओर झपटीं। जान पड़ता था—पचनद से उमड़ता हुआ वह मेघसमूह पूर्व के समस्त राज्यों को अपनी छाया में छिपा लेगा।

चाणक्य पहले ही तक्षशिला के लिए प्रस्थान कर चुका था। उसने कहा था—मैं कुछ दिन बाद अकेले ही मगध की सभा में प्रवेश करूंगा।

⊙

मगध की राजधानी पाटलिपुत्र* उस समय सम्पन्नता के चरम शिखर पर थी। वहां के कण-कण में वैभव-विलास और रागरंग

* आधुनिक पटना नगर

की गंध थी—छवि थी। प्रजा कैसी है, इस ओर किसी का ध्यान न था। राजा और राजपुरुष—सभी आमोद-प्रमोद में डूबे रहते थे। पश्चिमी सीमा पर खड़ा विजेता सिकन्दर मगध पर आक्रमण करना चाहता है, यह सूचना पाकर भी नन्द ने कहा था—"पंचनद से मगध तक आ सकना यूनानियों के लिए स्वप्न में भी सम्भव नहीं है। और, यदि आर्यावर्त के सारे राजाओं को परास्त करके वह यहां तक आ ही जाए, तो मेरी विशाल सेना उसे क्षण-भर में पीस डालेगी।"

मगध-सम्राट् नन्द को नौका-विहार का व्यसन था। गंगा के वक्ष पर वह कई-कई दिनों तक यात्री की भांति टिका रहता था। नौका पर मनोरंजन के सारे साधन साथ रहते थे। वह आठों पहर सुरा-सुन्दरी और संगीत से घिरा रहता था। उसने अपने उद्यान में भी एक बड़ा-सा सरोवर बनवाकर नौका-विहार की व्यवस्था कर रखी थी। वह नित्य संध्या को वहां विहार करने जाता था—उसका कथन था—स्वर्ग में इन्द्र हो या नहीं, पृथ्वी पर एक इन्द्र है और उसका नाम है नन्द! निराला मगध का सम्राट् नन्द!

उस दिन पूर्णिमा थी। वाटिका वैसे ही मोहक थी, अब तो उसे खूब सजाया भी गया था। सरोवर का जल केतकी की सुगन्धि से सुवासित हो रहा था। झिलमिलाते हुए रेशमी वस्त्रों से सजी पांच नौकाएं तैर रही थीं नृत्य-संगीत के अनेक साधन वहां प्रस्तुत थे। रात को जल में तैरने वाले पक्षी भी सरोवर में क्रीड़ा कर रहे थे। वे घूम-घूम कर मानो मन्द स्वर में परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। सचमुच, स्वर्ग और नन्दन-कानन की कल्पना वहां साकार हो उठी थी।

सर्वत्र दूध जैसी चांदनी फैली थी। धीमी-धीमी पुरवाई बह रही थी। पांचों नौकाएं पानी में लगे हुए चक्रों से बंधी रस्सियों

के सहारे अपने-आप इधर-उधर तैर रही थीं। एक पर नन्द था, शेष पर पांच सुन्दरियां। चन्द्रमा के धवल प्रकाश में चमक रहे उनके वस्त्र और आभूषण मनमोह लेते थे। हर सुन्दरी बारी-बारी से पास आकर नन्द को एक घूंट मदिरा पिला देती थी। जान पड़ता था, ससार का वासना, विलास और व्यभिचार इन्हीं नौकाओं पर आ लदा है। नन्द एक मोटी-सी आसन्दी के सहारे, अधलेटी मुद्रा में पड़ा था। मदिरा का प्रभाव अब उसे शिथिल कर रहा था। उसकी पलकें झपकने लगी थीं। कभी-कभी कोई बढ़कर मदिरा से भरा चषक उसके होंठों से लगा देती, तब वह क्षण-भर को सजग हो जाता।

फिर वही जम्हाइयां और वही गाढ़ी तिन्द्रा। उसके बाद फिर वही चषक···वही क्रम निरन्तर चलता रहा।

आधी रात बीत चली थी। कोलाहल-कलरव समाप्त हो गया। चारों ओर गहरा सन्नाटा व्याप्त था। दिन-भर के हारे-थके नागरिक गहरी नींद में सो रहे थे। कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ रहा था। दिन-भर जनाकीर्ण रहने वाला राजमार्ग भी इस समय सुनसान हो गया था। न कहीं कोई प्राणी था, न कोई शब्द। तवल प्रहरियों का स्वर कभी-कभी गूंज उठता। फिर वही सन्नाटा।

ठीक इसी समय एक व्यक्ति अपने को काले कपड़ों में छिपाए उधर से निकला। वह हाथ में छोटा-सा धनुष और कई एक बाण लिए हुए था। उसने एक बार चौकन्नी निगाहों से इधर-उधर देखा, फिर तेजी से चलने लगा। बीच-बीच में ठमककर वह शायद आहट लेता था—कोई आ तो नहीं रहा है?

⊙

राजा नन्द का मन्त्री राक्षस, दिन-भर की थकान से चूर इस समय पहली नींद में डूबा पड़ा था। उसे एक स्वप्न दिखाई पड़ा—

'एक सरोवर है, उसका जल अकस्मात् लाल हो उठा, जैसे वह रक्त-सरोवर हो। मगधराज नन्द उसमें डूब रहा है। चार-पांच स्त्रियां उसे बचाने का प्रयत्न करती हैं; किन्तु वह डूबता ही जा रहा है। तभी रक्त की लहरों में छिपा एक भयानक घड़ियाल नन्द का पांव पकड़कर खींचने लगता है। नन्द का चीत्कार गूंज रहा है; किन्तु कोई उसकी रक्षा करने वाला नहीं है। विचित्र घड़ियाल कभी-कभी ठठाकर दैत्यों की भांति हंसने लगता है। नन्द थोड़ी देर तक छटपटाता है, हाथ-पांव मारता है; किन्तु अन्ततः रक्त के सरोवर में डूब जाता है। उसके साथ ही घड़ियाल भी अदृश्य हो जाता है···अकस्मात् सरोवर के स्थान पर नगर का दृश्य उभर आता है। चारों ओर हवन-पूजन हो रहा है और वायुमण्डल में सूना राज्यसिंहासन निराधार-सा चारों ओर तैर रहा है, मानो अपने अधिकारी की खोज रहा हो···

राक्षस चौंककर जाग पड़ा। उसका सारा शरीर पसीने से नहा उठा था और हृदय की धड़कनें अस्वाभाविक रूप से तेज हो गई थीं। स्वप्न की याद ने राक्षस को रोमांचित कर दिया। उसे ज्योतिष का भी ज्ञान था। स्वप्न के परिणाम की कल्पना से उसका सर्वांग कांप उठा। आशंका और आतंक के भाव उसे विचलित करने लगे। नन्द के नौका-विहार का कार्यक्रम उसे मालूम था। वह तुरन्त उठकर सरोवर की ओर दौड़ पड़ा। उसके मन में रह-रहकर किसी भयंकर दुर्घटना की आशंका उठ रही थी—कहीं ऐसा न हो कि महाराज सचमुच ही सरोवर में डूब जाएं।

राजप्रासाद के जिस खण्ड में महामंत्री का निवास था, नन्द का क्रीड़ा-सरोवर उससे थोड़ी ही दूर पर था। राक्षस उद्यान के द्वार पर ही पहुंचा था कि उसे किसी का दारुण चीत्कार

सुनाई पड़ा—'आ ऽऽऽह !'

जी धक् से हुआ। महामंत्री के पांवों की गति में अस्वाभाविक वेग आ गया। दस पग बाद ही फिर वही करुण स्वर गूंज उठा—'आ ऽऽह !' दूसरे ही क्षण एक साथ कई स्त्रियों का क्रन्दन वातावरण को गुंजाने लगा, "हाय महाराज ! हाय···"

राक्षस का हृदय और तेजी से धड़कने लगा। दुःस्वप्न सच होकर रहा ! वह पूरी ताकत लगाकर सरोवर की ओर भागा। सहसा किसी का कर्कश स्वर सुनाई पड़ा—"ले पाजी ! मेरे सात पुत्रों की हत्या का फल भोग !"

इसके बाद 'छपाक्' की ध्वनि उठी, जैसे कोई वस्तु पानी में गिरी या फेंकी गई हो।

"हा हन्त ! क्या सर्वनाश हो ही गया ?" राक्षस विमूढ-जैसा जहां-का-तहां ठिठक गया। उसकी विवेक-शक्ति सहसा ही लुप्त हो गई···

अगले ही क्षण सरोवर की ओर से एक मानवाकृति इसी ओर आती दिखाई पड़ी। यह वही धनुर्धर था, जो थोड़ी ही देर पहले गली से निकला था। राक्षस ने उसे देखते ही तलवार खींच ली और उसकी ओर झपटा, "खड़ा रह !"

किन्तु आगन्तुक ठहरा नहीं, तुरन्त दाईं ओर घूमा और झुरमुटों की ओट लेकर द्रुतगति से दूर हटने लगा। पीछा करने का समय नहीं था। राक्षस ने रुककर पल-भर सोचा, फिर उनके पैर स्वतः सरोवर की ओर बढ़ चले। सबसे पहले वह अपने महाराज का कुशल जानना चाहता था—'यह कैसी अनहोनी घट गई, भगवान् !'

तभी लगा कि कोई कह रहा है, 'मित्र राक्षस ! जाकर आनन्द मनाओ। हत्यारे नन्द के वध से मेरे सात निर्दोष पुत्रों का प्रतिशोध हो गया। तुम्हारा मित्र शकटार आज

सन्तुष्ट है मानो जीवन का लक्ष्य पा गया हो !'

"हे विधाता !" राक्षस का हाथ माथे पर जा पड़ा। वह अचेत-सा हो चला, किन्तु सहसा ही कर्तव्य का बोध हुआ। वह दौड़कर सरोवर के तट पर पहुंचा, जहां क्रीड़ा के स्थान पर दारुण क्रन्दन का वातावरण छाया हुआ था। वही रात्रि थी, वही सरोवर था ; किन्तु दृश्य सर्वथा विपरीत था। नर्तकियां विलाप कर रही थीं और नाविक पानी में कूदकर, सात बाणों से बिंधे हुए राजा नन्द का शव नौका पर लादे उसे किनारे लाने का प्रयत्न कर रहे थे।

सवेरा होने के पूर्व ही सारे नगर में नन्द की मृत्यु का समाचार फैल गया। हत्यारे के विषय में अनेक अनुमान लगाए जा रहे थे, किन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन था कि नन्द की मृत्यु से प्रजा को हर्ष हुआ है अथवा चिन्ता ? हर्ष का आधार था, नन्द के अत्याचारी शासन का अन्त और चिन्ता का कारण था, सिंहासन के लिए योग्य उत्तराधिकारी की खोज।

⊙

कुछ समय पश्चात् सहसा पर्वतक की सेना आ धमकी। नन्द की मृत्यु ने उसका मार्ग एकदम निष्कण्टक कर दिया था। वह बिना विरोध के पाटलिपुत्र में प्रविष्ट हो गई। अब तक चाणक्य भी पाटलिपुत्र आ गया था और राक्षस से उसकी बातचीत हो चुकी थी। दोनों ने मिलकर राज्य की व्यवस्था और देश के संगठन का निर्णय किया।

किन्तु मगध का राज्याधिकारी कौन हो, यह जटिल प्रश्न अब तक अनुत्तरित था। नन्दों में कोई वैसा प्रतिभाशाली पुरुष था ही नहीं, जो विशाल मगध साम्राज्य को संभाल सके। कोई अन्य भारतीय नरेश इतना योग्य तथा समर्थ नहीं दीख रहा था। राक्षस, शकटार और चाणक्य—उस युग के ये तीनों श्रेष्ठ राज-

नीतिज्ञ उत्तराधिकार रूपी त्रिभुज के तीन बिन्दु थे, जिनका कोई एक केन्द्र निर्मित होना था।

राक्षस का झुकाव पर्वतक की ओर था, किन्तु पर्वतक की दुर्बलताओं का उद्घाटन करते हुए चाणक्य युवक शशिगुप्त का नाम प्रस्तुत कर रहा था। बुद्धिमान् शकटार सर्वथा तटस्थ था। उसने कहा, "संयोगवश इस समय दोनों ही यहां आए हुए हैं—दस-पांच दिन तक उन्हें भली-भांति परख लिया जाए, तभी कुछ निर्णय करना उचित होगा।"

अन्ततः यही निश्चित रहा। तब तक के लिए शासन का सारा भार मंत्री राक्षस को ही उठाना पड़ा।

पर्वतक और शशिगुप्त के ठहरने की व्यवस्था राजभवन में की गई थी। अब वे मगध में आक्रामक नहीं, राजकीय अतिथि थे। उन्हें हर प्रकार की सुविधायें दी गई थीं। मंत्री राक्षस उनके प्रति प्रजा में आदर और प्रजा-निष्ठा का भाव जगाने की चेष्टा कर रहा था, जिससे राजा पर्वतक को पूरा विश्वास था कि मैं ही मगध का सम्राट् बनूंगा।

शशिगुप्त भी सोचता था कि महाराज पर्वतक ऐसे वीर को ही यह सिंहासन मिलना चाहिए। सिकन्दर सरीखे विख्यात योद्धा को परास्त करने में समर्थ है। यदि गुरुदेव ने स्वीकार किया, तो मैं मगध की सेना में ही कोई पद प्राप्त कर लूंगा।

कई दिन बीत गए। पर्वतक स्वतन्त्र भाव से कभी घूमता, कभी विहार करता, कभी अपनी सेना का निरीक्षण करता और कभी राजमहल में पड़ा सोया करता था। वह विलासी तो था ही, बिना युद्ध के मगध जैसा साम्राज्य पा जाने की प्रसन्नता से मन कुछ अधिक चंचल हो उठा। अब सिकन्दर का वाक्य उसे अपने कानों में प्रतिक्षण गूंजता प्रतीत होता था, "राजा और वीर ही तो सुरा-सुन्दरी के प्रेमी होते हैं!"

मगध के राजभवन की परिचारिकाओं में एक थी चन्द्रा। वह दासी होकर भी राजकुमारी जैसी प्रतीत होती थी। उसके मोहक रूप-लावण्य और वाणी-व्यवहार में अद्भुत आकर्षण था। पर्वतक का मन उसे देखकर डोल गया। अपनी पद-मर्यादा और संयम को भुलाकर, वह चन्द्रा पर अनुरक्त हो गया। चन्द्रा का सम्मोहन उत्तरोत्तर तीखा होता जा रहा था। धीरे-धीरे चन्द्रा पर्वतक के मन-मस्तिष्क पर छा गई। जैसे-जैसे पर्वतक के मन में उसके प्रति अनुरक्ति बढ़ी, वैसे ही वैसे उसके मन में भय, ईर्ष्या, शंका और षड्यन्त्र के विचार भी प्रबल होने लगे। यह प्रणय-व्यापार उसकी निश्चिन्तता में घोर बाधा बन गया। अब निरन्तर एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व पर्वतक को ग्रस्त किए रहता था।

चारित्रिक पतन के यही परिणाम तो होते हैं!

एक दिन पर्वतक ऐसी ही अस्थिर मनोदशा में बैठा था कि परिचारक ने आकर सूचना दी, "महाराज! मगध के पूर्व मंत्री आचार्य शकटार आए हुए हैं।"

"आदरपूर्वक यहीं ले आओ!" उत्साह-भरे स्वर में पर्वतक ने आज्ञा दी और भविष्य की कल्पना में डूबकर मुस्कराने लगा। वह मन में सोच रहा था—'यह शकटार अवश्य मेरी सहायता कर सकता है। बुद्धि और प्रभाव में यह राक्षस अथवा चाणक्य से किसी भी प्रकार कम नहीं है। नन्द से इसने कितना भयंकर प्रतिशोध लिया है! यदि यह मेरा साथ दे सके तो···'

शकटार ने कक्ष में प्रवेश किया। पर्वतक ने उठकर उसकी अभ्यर्थना की, फिर सम्मानपूर्वक अपने निकट ही आसन पर बैठाते हुए पूछा, "मेरे लिए क्या आज्ञा है, आचार्य?"

शकटार चकित हुआ। आक्रान्ता नरेश की यह अति विनम्रता उसे नितान्त अस्वाभाविक लगी। पर्वतक की दुर्बलता को वह समझ चुका था। भेद लेने के लिए उसने बड़े ही दीन स्वर में

कहा, "मैं तो आपका सेवक हूं, महाराज ! आज्ञा आप दें, मैं प्राण देकर भी उसका पालन करूंगा।"

पर्वतक के मस्तिष्क में बिजली की भांति एक विचार कौंधा—ब्राह्मण लोभी होता है। यदि इस दरिद्र को मैं वशीभूत कर सकूं तो मेरी सफलता निश्चित हो जाएगी !

उसने पहले की ही भांति विनम्र भाव से कहा, "आपको आज्ञा देने का साहस तो मैं कैसे कर सकता हूं; हां, आपकी कृपा अवश्य चाहता हूं।"

"बताइए।" शकटार ने उत्साह दिखाते हुए कहा।

"मैं मगध के राजसिंहासन के लिए ही उतनी दूर से आया हूं, आचार्य !" पर्वतक ने सहसा नग्न सत्य कह दिया।

"वह तो आपको मिलेगा ही।" शकटार सतर्क हुआ।

"किन्तु मेरी राह में एक विघ्न है !"

"कौन ? किस रूप में ?"

"आचार्य चाणक्य का झुकाव शशिगुप्त की ओर है !"

"तो ?" एक क्षण मौन रहकर शकटार ने पूछा. "मेरे लिए आज्ञा ?"

पर्वतक कुछ हिचकिचाया, फिर साहस जुटाकर उसने कह डाला, "आचार्य ! कल की सभा में राजसिंहासन के उत्तराधिकारी का निर्णय होना है। यदि आज की रात बीतने के पहले ही शशिगुप्त को समाप्त किया जा सके तो मेरा मार्ग निष्कण्टक हो जाएगा। फिर तो मैं निश्चय ही सारे आर्यावर्त का सम्राट् बन जाऊंगा। और विश्वास कीजिए, यदि ऐसा हो सका, तो आप ही मेरे महामात्य होंगे—विशाल मगध साम्राज्य के महामात्य !"

शकटार चिन्तित मुद्रा में कुछ देर चुप बैठा रहा, फिर गम्भीर होकर बोला, "आचार्य चाणक्य के रहते तो ऐसा सम्भव नहीं है, महाराज !"

"तो उस कुरूप क्रोधी ब्राह्मण को भी उसके शिष्य के साथ ही समाधि दे दीजिए न !" पर्वतक जैसे एकदम नग्न हो पड़ा, सदा के लिए चिन्ता की जड़ ही कट जाएगी। और आपसे क्या भेद रखना है—मैं तो अब चन्द्रा के साथ आमोद-भरा जीवन जीना चाहता हूं—साम्राज्य तो वस्तुतः आपके हाथों में ही रहेगा, जैसा चाहें, करें !"

"चन्द्रा ! यह चन्द्रा कौन है, महाराज ?" शकटार चकित हुआ।

"आप नहीं जानते ? वैसे तो वह इस राजभवन की एक दासी-मात्र है, आचार्य ! किन्तु मैंने यही देखा कि मगध में तो जो कुछ भी महत्त्वपूर्ण है, उसका तिरस्कार ही होता आया है। जैसे आपका ! चन्द्रा का भुवनमोहन रूप अप्सराओं को भी लज्जित करता है। पर इस राजभवन में उसका अस्तित्व सरोवर में कमल जैसा है। चन्द्रा तो आकाश के चन्द्रमा से भी अधिक मोहक, सुन्दर और शान्तिदायिनी है, आचार्य ! अनिन्द्य सुन्दरी !"

"तब तो ठीक है।" शकटार अकस्मात् ही उठ खड़ा हुआ।

"तो फिर···" पर्वतक ने उठकर हाथ जोड़ दिए। "···मैं निश्चिन्त रहूं न ? आप आज रात में ही उन गुरु-शिष्य को··· कल मेरा राज्याभिषेक का पर्व होगा न ?"

"अवश्य !" शकटार का स्वर अत्यन्त गम्भीर था।

"बस, आचार्य आपकी कृपा है, तब तो मेरा जीवन सार्थक हो गया ! कल मैं मगध का सम्राट् होऊंगा और चन्द्रा मेरी महिषी होगी ! आप मेरे महामात्य होंगे और मैं···मैं आपका दास होऊंगा···" कहते हुए पर्वतक ने अचानक झुककर शकटार की चरण-रज माथे से लगा ली।

उस रात राजा पर्वतक जब शय्या पर लेटा तो कल्पना का

मोहक रूप उसे फिर चंचल करने लगा। 'कितना भाग्यशाली हूं मैं ! सिकन्दर परास्त हुआ। नन्द परास्त हुआ। और अब तक शशिगुप्त परास्त हुआ और उसका गुरु कूटनीतिज्ञ चाणक्य भी परास्त हुआ ! कल आकाश में मगध सम्राट् पर्वतक का जयघोष गूंजेगा।

निद्रा में भी पर्वतक के मन में बराबर ऐसी ही तरंगें उठती रहीं।

लेकिन दूसरे दिन सवेरे जो कुछ हुआ, वह कल्पनातीत था। पर्वतक को जगाने वाली दासी ने देखा—महाराज का शरीर एकदम काला पड़ गया है। नाड़ी और सांस बन्द हैं। प्राण-पखेरू उड़ गया था। उनके हाथ-पांव अकड़कर लकड़ी की भांति हो गए थे। जयकार के स्थान पर उसके मुंह से चीख निकली, "हाय महाराज !"

क्षण-भर में ही, पर्वतक की आकस्मिक मृत्यु का समाचार चारों ओर फैल गया।

⊙

दूसरी ओर देवमन्दिर में पूजा करके सीढ़ियों से उतरते हुए दो प्रौढ़ ब्राह्मण परस्पर वार्तालाप कर रहे थे :

"आर्य शकटार ! कल आपके द्वारा मिली सूचना कितनी महत्त्वपूर्ण रही।"

"क्या करता बन्धु ! जब उसने मुझे दो हत्याओं के बदले में महामात्य पद का प्रलोभन दिया, तभी मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य, इसने और किसी को भी, आप दोनों की हत्या करने के लिए नियुक्त किया होगा ! वैसे भी, मेरी दृष्टि में पर्वतक महान् सम्राट् पद के योग्य नहीं लगा।"

"चन्द्रा विषकन्या है, आर्य शकटार, मेरा अनुमान है कि पिछली रात उसी ने पर्वतक के प्राण लिए होंगे !"

"अच्छा !"

"हां, और कोई उपाय भी तो नहीं था ! आज मगध के राज्याधिकारी के सम्बन्ध में निर्णय और सम्राट् का अभिषेक होना है, पर्वतक के रहते कुछ न कुछ विघ्न तो अवश्य पड़ता। स्वार्थी और विलासी नरेश किसी भी राज्य के लिए हितकर नहीं होता। मैं सारे आर्यावर्त को एक सूत्र में पिरोकर जिस संगठित और सुदृढ़ साम्राज्य की कल्पना कर रहा हूं, पर्वतक जैसे दुर्बल व्यक्तियों के द्वारा वह कभी साकार नहीं हो सकती थी !"

"आप शशिगुप्त को ही मगध का शासक बनाइए। इस युवक के मन पर मैं आपकी बुद्धि और नीतिज्ञता का स्पष्ट प्रभाव देख रहा हूं। वह योग्य एवं प्रतापी सम्राट् होगा।"

चाणक्य ने आकाश की ओर हाथ उठा दिए।

मन्दिर के बाहर पहुंचकर वे ठमक गए। एक सेवक दौड़कर आया। बोला, "सर्वनाश हो गया, भगवन् ! महाराज पर्वतक नहीं रहे।"

"अरे !" दोनों आचार्यों के मुंह से एक साथ निकला। उन्होंने एक-दूसरे की ओर अर्थ-भरी दृष्टि डाली और सेवक के साथ तुरन्त पर्वतक के निवास की ओर चल पड़े।

उनकी अर्थ-भरी-दृष्टि का आदान-प्रदान सेवक देख नहीं सका, देखकर भी वह क्या समझता !





विश्वविजय का स्वप्नद्रष्टा सिकन्दर परिस्थितियों से परास्त, हताश-सा दिग्विजय का मोह छोड़कर स्वदेश यूनान की ओर लौट रहा था। समुद्रयात्रा का विचार अकस्मात् त्यागकर वह थल-मार्ग से ही यूनान की ओर बढ़ा। अभी बिलोचिस्तान तक ही पहुंचा था कि एक नई विपत्ति सामने आ खड़ी हुई—वहां की वर्बर जातियां संगठित होकर सिकन्दर से मोर्चा लेने के लिए आ डटीं। सिकन्दर ने अनुभव किया—मेरे सैनिकों में युद्ध करने की न तो सामर्थ्य है, न उमंग, फिर वर्बर विलोचों से युद्ध का अर्थ था निश्चित पराजय; साथ ही लूट में अपनी रसद तक गंवाकर भूखों मरना! उसने धूर्तता का आश्रय लिया। बिलोच सरदारों को भेंट उपहार देकर उन्हें खुश किया। उनसे मित्रता का नाटक रचाकर उसने राह के लिए कुछ खाद्य-सामग्री भी प्राप्त कर ली और उसी दिन तेजी से आगे निकल गया।

बिलोचिस्तान के पश्चिम में मकरान का मरुप्रदेश था। यूनान के लिए इस मरुभूमि को पार करके जाना पड़ता था। सिकन्दर को यह मरुमार्ग यमपुरी का मार्ग प्रतीत हुआ—बीहड़ बियावान रास्ता। बीच में न कहीं गांव, न नगर। पानी की

एक बूंद तक नहीं। हरियाली तो जैसे सपने में भी नहीं आती थी। दिन को आकाश से आग बरसती, धरती की रेत दहकती और रात को खून जमा देने वाली कड़ाकी ठण्ड जकड़ लेती। बिलोच सरदारों की दी हुई वस्तुएं भी समाप्त हो गई थीं। सैनिक क्या खाकर प्राण-रक्षा करते? अन्न-जल के अभाव में सारी सेना तड़पने लगी। विजयोन्माद में आधी धरती रौंदने वाले सैनिक चूहों की भांति बिलबिलाने लगे। भीषण गर्मी, भयानक आंधी और रेतीले तूफानों के गर्जन से भरी उस दिगन्त-व्यापी मरुभूमि के बीच पड़कर सैकड़ों सैनिक प्राण खो बैठे। रहे-सहे लगभग विक्षिप्त हो उठे थे—कहीं जलाशय मिलता तो वे इतना पानी पी लेते कि उसी के कारण उनकी मृत्यु हो जाती। कितने ही सैनिक तो जलकुण्ड देखते ही उसमें कूद पड़ते थे। वे फिर जीवित नहीं निकल पाते थे। कुण्डों का पानी उनकी लाशों की सड़ांध से विषैला हो जाता।

इन विपत्तियों में भी सिकन्दर बढ़ता जा रहा था। और करता भी क्या? मुक्ति का कोई और मार्ग तो था नहीं। चारों ओर मृत्यु ही मुंह बाये खड़ी दिखाई पड़ती थी— चाहे यूनान की ओर बढ़ता, चाहे मकरान में पड़ा रहता। किन्तु उस घोर संकट में भी सिकन्दर का लोभ जाग्रत् था। वह विभिन्न स्थानों की लूट में प्राप्त स्वर्ण और रत्नों को प्राणों की भांति सजोए था। वह नित्य कई बार अपने कोष का निरीक्षण किया करता।

एक रात यूनानी सेना ने एक जलाशय के समीप पड़ाव डाला। पतली-सी जलधारा बह रही थी। दिन-भर के हारे-थके सैनिक अनुशासन और व्यवस्था को भूलकर धारा की ओर टूट पड़े। ठीक भर पानी पीकर वे जहां-तहां पसर गए। स्वयं सिकन्दर इतना शिथिल हो गया था कि सदा की भांति सेना का निरीक्षण

नहीं कर सका। जो जहां बैठा था, वहीं लुढ़क गया। सारे दिन किसी को एक दाना तक नहीं मिला था। मानो उसकी पूर्ति वे विश्राम से करना चाहते थे। किन्तु दुर्भाग्य प्रबल था, जिसने उनको विश्राम भी नहीं करने दिया। आधी रात के समय, जब सारी सेना सुध-बुध खोकर सो रही थी, अचानक ही एक बहुत बड़ा सोता फूट पड़ा। उससे प्रचण्ड वेग के साथ इतना पानी निकलने लगा कि धारा में बाढ़ आ गई। जब तक सेना संभल पाती, चारों ओर पानी ही पानी भर गया। यह नाश के ऊपर सर्वनाश था—देखते-ही-देखते सैकड़ों सैनिक डूब मरे। उनकी लाशें उतराने लगीं और नृशंसतापूर्वक रक्तपात करके लूटा गया वह विशाल कोष, जिसे सिकन्दर पल-भर को भी आखों से ओझल नहीं होने देता था, क्षण-भर में ही उसकी असहाय-सी फैली-फैली आंखों के सामने अनन्त जल-राशि में लुप्त हो गया। विधाता ने जैसे सिकन्दर पर कुपित होकर मकरान की मरुभूमि को समुद्र के रूप में परिवर्तित कर दिया हो।

इस विपत्ति ने सिकन्दर को एकदम तोड़कर रख दिया। विजेता में अब जैसे क्रोध की कल्पना भी नहीं रह गई थी। कातर स्वर में विलाप करते हुए वह बचे-खुचे सैनिकों के साथ किसी प्रकार मृत्यु के जबड़े जैसी मरुभूमि से निकल भागा। जीवन के कुछ दिन शेष थे, इसीलिए वह जीवित बच गया, किन्तु उसका गर्व और साहस न जाने कहां खो चुका था। अब वह एक नितान्त दीन-हीन प्राणी की भांति यूनान की राह पर रेंग रहा था।

यह यात्रा घोर कष्टप्रद सिद्ध हुई। सिकन्दर का शरीर एकदम काला पड़ गया। अनेक रोगों ने भी उसे जकड़ लिया—कभी खांसी, कभी ज्वर, कभी भय, कभी भ्रम! लगता था, किसी अज्ञात आशंका ने उसके मन-मस्तिष्क को दबोच रखा है।

उसकी बलिष्ठ सुन्दर काया इतनी विकृत हो गई थी कि सिकन्दर सहसा पहचान में ही नहीं आता था।

अन्ततः सिकन्दर भारत की सीमा से सैकड़ों मील दूर बेबीलोनिया नामक नगर पहुंचा। यूनान अब निकट ही था; किन्तु वहां तक पहुंचना भी असम्भव प्रतीत हो रहा था। वह एकदम निर्बल हो गया था। निरन्तर ज्वर ने उसकी जीवनी-शक्ति क्षीण कर दी थी। उसके चेहरे का तेज बुझ चुका था। आंखों में उन्माद के रोगी की-सी उचाटपन छाया रहता था। गालों की हड्डियां उभर आने के कारण उसकी भव्यता की जगह अब भयानकता झलकने लगी थी। उसका लम्बा-चौड़ा डील-डौल रक्त-मांस के अभाव में कंकाल जैसा हो गया था। अंधेरे में प्रेत जैसा दिखाई पड़ता था।

उस दिन वह दोपहर तक अचेत पड़ा रहा। ज्वर का ताप इतना उग्र था कि वह उन्मत्त की भांति प्रलाप करने लगा। बातों में न कोई क्रम होता न संगति। जो भी मुंह में आता, बकता रहता। पास बैठे सेवक सैनिक भीत-शंकित दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। उसके चेहरे की विकृति दूर से ही कह रही थी, 'इस दीये का तेल समाप्त हो चुका है, अब बुझा तब बुझा।' सेना के चिकित्सकों की कोई युक्ति काम नहीं कर रही थी। साथ में दो यूनानी हकीम भी रहते थे, वे भी हर उपाय करके परास्त हो गए। यमराज के सामने किसी का वश नहीं चलता।

⊙

संध्या को सिकन्दर के परम विश्वासी सेना[illegible]
ने वहां प्रवेश किया। साथ में उसकी पुत्री हेलेन [illegible]
सैनिक थे। वेश-भूषा और आकृति से स्पष्ट [illegible]
चारों दूर से कठिन यात्रा करके आ रहे हैं। ...

हुए संघर्ष की छाप उनके शरीर पर स्पष्ट थी।

जिस समय सेल्यूकस ने शिविर में प्रवेश किया, सिकन्दर को चेतना कुछ सम्भली हुई थी। उसने पास आकर कुछ ऊंचे स्वर में कहा—"सम्राट्! मुझे पहचान रहे हैं! मैं आपका अनुचर सेल्यूकस हूं।"

सिकन्दर लेटा हुआ था। उसने आंखें नहीं खोलीं, कदाचित् खोल ही नहीं सका। वैसे ही शिथिल पड़ा रहा, किन्तु वह सेल्यूकस का स्वर पहचान गया था, उसके माथे पर चिन्ता की रेखाएं उभर आईं, "तुम कहां से आ रहे हो?"

"मैं एरियाना से आ रहा हूं, सम्राट्!"

"क्या समाचार है? भारतवर्ष में क्या हो रहा है?" इतना बोलने में भी सिकन्दर को कई बार सांस लेनी पड़ी।

सेल्यूकस ने उसके वक्ष पर हाथ फेरते हुए बताया, "सम्राट्! भारतीयों की बात का कोई ठिकाना नहीं है। पर्वतक ने अकेले ही मगध पर आक्रमण कर दिया है। शशिगुप्त ने आरनस में विद्रोह करके पश्चिमी भारत से सारे यूनानियों को निकाल दिया है। मुझे भी हटकर ईरान चले आना पड़ा था। वहीं से आ रहा हूं। पर्वतक और शशिगुप्त दोनों मिलकर आपके राज्य की जड़ उखाड़ रहे हैं। दोनों ही मगध-विजय करके सारे भारत का सम्राट् बनने का सपना देख रहे हैं। पता नहीं, कौन सफल होगा—पर्वतक या शशिगुप्त?"

इस समाचार का आघात सिकन्दर के लिए दुस्सह था।

लम्बी-सी 'आह' भरकर वह थोड़ी देर चुप हो, फिर बोला—"तुम्हारे साथ और कोई है?"

"हां, सम्राट्! सेनापति नियारकस भी बैठे हुए हैं।। इनके साथ की अधिकांश सेना समुद्र में डूब गई है···ये बीमारी का समाचार पाकर ज्यों-त्यों देखने आए हुए हैं। मेरे साथ हेलेन भी

आई है।"

"अच्छा !" घोर आश्चर्य के स्वर सिकन्दर के मुह से निकला। उसने सारी शक्ति लगाकर आंखे खोलीं और उठने का प्रयत्न किया। लेकिन यमराज ने न जाने कब से वहा खड़े थे, उन्होंने बीच में ही रोक दिया। सिकन्दर का प्राण-पखेरू उड़ गया। उसका शरीर शिथिल होकर गिर पड़ा। आंखें ज्यों की त्यों मुदी रही।

अपने दिग्विजयी सम्राट् की ऐसी करुण मृत्यु देखकर सारे यूनानी दहल उठे। हेलेन अचेत हो गई। नियारकस जडवत् बैठा रह गया और सेल्यूकस सीने पर हाथ रखकर पसीने मे डूब गया। "हाय !"

ठीक इसी समय पश्चिमी क्षितिज पर सूर्य डूब गया और धरती ने अंधकार की गहरी काली चादर ओढ ली। आकाश में मंडराते निशा-पक्षियों के कर्कश स्वर रह-रहकर वायुमण्डल में गूज उठते—"क्यां···ं···"



६



अब चाणक्य के मार्ग में कोई बाधा न थी। लक्ष्य प्राप्त करना सरल हो गया था। नन्द, पर्वतक और सिकन्दर तीनों का अस्तित्व सदा के लिए समाप्त हो गया था। सेल्यूकस भागकर ईरान चला गया था। अन्य कोई ऐसा शक्तिशाली राजा न था, जो शशिगुप्त का विरोध करता। शकटार और मगध-मंत्री राक्षस ने भी चाणक्य के साथ सहमति प्रकट की। उन्हें भी लगा कि समस्त आर्यावर्त को संगठित कर सकने की क्षमता और योग्यता इस समय मात्र शशिगुप्त में है, अतः उसी को सम्राट् के पद पर आसीन करना चाहिए। अब राक्षस और शकटार दोनों ही दाएं-बाएं हाथ की भांति चाणक्य को सहयोग देने को प्रस्तुत थे।

सर्वसम्मति से शशिगुप्त को सिंहासनासीन करने का निश्चय किया गया। यह भारत में अपने युग का प्रथम और तथा अप्रतिम समारोह था। वैदिक विधि-विधान से राज्याभिषेक के भव्य उत्सव का आयोजन प्रारम्भ हुआ। दूर-दूर से विख्यात पण्डित धुरन्धर ज्योतिषी, सम्मान्य साधु-महात्मा और गुरुकुलों के आचार्य वहां आमन्त्रित किए गए। पाटलिपुत्र नगर की नयना-

भिराम साज-सज्जा की गई थी। वैभव-विलास चारों ओर बिखर पड़ा। हां, उसमें शोषण या अनैतिकता की गंध तक न थी। सर्वत्र श्रद्धा, शुचिता, सम्मान और सहयोग की भावना व्याप्त थी। विभिन्न राज्यों के नरेश और शूर-सेनप उत्सव में आए हुए थे। गत एक दशाब्दी की घटनाओं से प्रभावित होकर सबने चाणक्य की नीतिज्ञता और शशिगुप्त के पराक्रम को स्वीकार कर लिया था। उसके सदाचरण और प्रजा-पालन की तत्परता की चर्चा सारे देश में होने लगी।

अन्ततः शुभलग्न में शशिगुप्त को व्रत-उपासना और हवन-पूजन द्वारा शुद्ध-समर्थ करके मगध के राज-सिंहासन का स्वामी घोषित किया गया। मगध-सम्राट् का अभिषेक सम्पन्न हुआ। शंखध्वनि और वेदमंत्रों की ध्वनि के बीच चाणक्य ने स्वस्ति वाचन किया।

गुरु ने शशिगुप्त का पुनः नामकरण किया—सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य'* और उसे सिंहासन पर बैठने की स्वीकृति दी।

चारों ओर उल्लास का वातावरण छाया हुआ था। दशाब्दियों के पश्चात् प्रजा अपने मनोनुकूल नरेश का अभिनन्दन कर रही थी। आज अत्याचार, उत्पीड़न और शोषण की आशंका से मुक्त जन-मानस में निष्ठा और राज्यभक्ति की लहरें उमड़ रही थीं। चिन्ता, सन्देह और विषाद की कहीं छाया तक न थी। विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ नागरिकों का उत्साह-भरे स्वर से उठता जयघोष आकाश मण्डल को कम्पाय-

* मौर्य शब्द पर बड़ा मतभेद है। अनेक नई और गहन खोजों के आधार पर अब यह स्वीकार किया जाने लगा है कि शशिगुप्त 'कोहमोर प्रदेश, (सिन्धु और कुमार नदी के बीच का भाग) का निवासी होने के कारण 'मौर्य' कहलाया।

नीति का क्षेत्र त्यागकर संन्यासी हो गया। बिखरे हुए भारतीय राज्यों को एक सूत्र में बांधकर वह स्वयं तपस्या के मार्ग पर चल पड़ा। उसका सिद्धान्त था : 'ब्राह्मण को राजलोभी नहीं होना चाहिए, उसके लिए तपस्या ही श्रेष्ठतम धर्म और कर्म है।'

तपस्वी जीवन में भी चाणक्य देश-हित से विरक्त नहीं हुआ। उसने 'अर्थशास्त्र' नामक अद्वितीय ग्रन्थ की रचना उसी समय की थी। आज भी वह संसार में सर्वत्र आदर के साथ पढ़ा जाता है।

